

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

**TIGHT BINGING
BOOK**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180750

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H83 ^HAcc No. 3340
1142K

Author :

~~महियाना, डी. जे. डी.~~

Osmania University Library

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H83

Accession No. ^H3340

Author ^{M42K}

Title

महिला शिक्षा
विश्व शांति दिवस

This book should be returned on or before the date last marked below.

--	--	--

किस्सा नर्मदावेन, गंगूबाई

लेखक की अन्य रचनाएँ

उपन्यास

१. हौन्दार	६००
२. बोरीवली से बोरीचन्दर तक	३५०
३. कबनरखाना	२५०
४. चिट्ठीरसैन	६००
५. मुख-मरोवर के हंस	प्रेस में
६. बारूद और बत्तूली	प्रेस में

कहानी

१. मेरी तैंतीस कहानियाँ	६५०
-------------------------	-----

कविता-संग्रह

१. याद की ग्वालन	प्रेस में
२. कहना चाह था	प्रेस में

लोक-साहित्य

१. बारा मण्डल की लोक-कथाएँ	१५०
२. अलमोडा की लोक-कथाएँ	१५०
३. तराई-प्रदेश की लोक-कथाएँ	१२५
४. डोटी-प्रदेश की लोक-कथाएँ	१२५
५. नैनीताल की लोक-कथाएँ	१२५
६. चम्पावत की लोक-कथाएँ	१५०
७. कुमाऊँ की लोक-कथाएँ—१	१५०
८. कुमाऊँ की लोक-कथाएँ—२	१५०
९. कुमाऊँ की लोक-कथाएँ—३	१५०

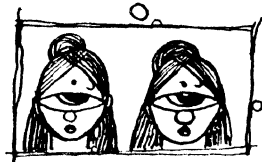
बाल-साहित्य

१. हीरामन तोता	प्रेस में
२. ईश्वर की मिठाई	प्रेस में
३. हिगाष्टकी	प्रेस में

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६



किरुसा नर्मदा येन गंगूबाई



शैलेश अदियानी

आत्माराम एण्ड संस

दिल्ली • जयपुर • जालंधर

KISSA NARMDABEN, GANGUBAI

(a novel)

by

Shailesh Matiyani

Rs. 2.50

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट दिल्ली

चौड़ा रास्ता जयपुर

माई ह्रीरां गेट जालन्धर

COPYRIGHT



ATMARAM & SONS, DELHI—6

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य	:	दो रुपए पचास न० पै०
आवरण	:	योगेन्द्रकुमार 'लल्ला'
मुद्रक	:	सुरेन्द्र प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

आई
नन्दकिशोर भितल
की
सादर

आमुख

न सात समन्दर-पार का, न राजा इन्दर के दरबार का, और न शहजादे शहरपार या साढ़े तीन यार का—

यह किस्सा है, नाँठिया-पापड़ी, ऊसल-पाव-मसाला डोसा, बटाटा बड़ा, चालू-स्पेशल चा और भेल-पुरी के देश बम्बई का ।...

जहाँ पारले की औरेंज की बाटली फकत पाँच आने में और ग्लूको-कोला की बाटली फकत चार आने में—लेकिन, इन दोनों से भी कहीं मीठी-कसली दो बेगमें—एक भारत के उत्तरी-ध्रुव कश्मीर की, दूसरी दक्षिणी-ध्रुव बेंगलोर-मंगलोर की—सिर्फ आठ आने में ।

जहाँ, वस्ताद के शब्दों में, रोज़-रोज़ जिन्दगी के नए-नए 'डिरामे' होते हैं । डिरामे, जिनका मखमली-पर्दा सिर्फ आखिरी-सीन के समय खुलता है ।...

जहाँ तिरिया के चार नहीं, सिर्फ दो भेद होते हैं । जहाँ जिन्दगी-मौत में सिर्फ 'हार्डफन' का फासला है ।...

जहाँ किसी भी सुन्दर तिरिया की ओर होंठों को तिरछा कर, चारसीनार सिगरेट या सफेद-धागा-टुकड़ी बीड़ी का धुँआं छोड़ते हुए, दाँए हाथ से बाँए हाथ को कलेजे और ज़िगर के संधिस्थल पर दबाकर, 'हाए, मेरी सुरैया ।' कहकर, सर्द आहें भरने वाले फुटपाली के शहेन्शाहों की बस्ती है ।...

जहाँ लँगोटी के कमर में खोसे हुए, अतिरिक्त कपड़े की गीली साफ़ी चरस की चिलम में लपेटकर, 'लगे दम... मिटे गम'...के लटके और (दो में से एक गई गुल्ली डंडा के खेल में, बाकी वची एक) आँख को चरस की चिलम और कली के साथ ही सातवें-आसमान की ओर उठाने वाला उस्ताद रहता है ।

वस्ताद—जो वात्सायन के काम-सूत्रों की स्थापनाओं का भी रिकार्ड ब्रेक करता है, कि 'असिल में तिरिया के चार नहीं, सिर्फ दो भेद होते हैं।'।

यहाँ वस्ताद का चेला पोपट रहता है, जो वस्ताद की सुलगाई चरस-चिलम का सटका भरते हुए—“या अली, जिसने न उठाई चरस की कली, उस मरद से तिरिया भली।” कहते हुए, तिरिया के, दो नहीं, चार भेदों का सिल-सिलेवार ब्यौरा वस्ताद के सामने पेश करता है—क्योंकि, उसने जिन्दगी में 'कालू की बकरी, हरे-हरे पत्ते, एक दिन खेत में,' वाली 'दर्जा ब की बालपोथी' के बाद, दूसरी पुस्तक केवल 'कोकशास्त्र' ही पढ़ी थी।... 'कोकशास्त्र' भी कैसा ? सचित्र। जो हिन्दुस्तान में, हवा में ही चौरासी-आसनों का प्रयोग करने वाली पीढ़ी पैदा करता है... 'सचित्र-कोकशास्त्र', जो 'छत्तीस विलायती यौवन की तस्वीरों' और 'चौरासी हिन्दुस्तानी-आसनों'-सहित बड़े-बड़े पूँजीपतियों के 'ब्लैक' की तरह सरे-आम चलता है।...

पोपट ने भी यही सचित्र कोकशास्त्र पढ़ा है, और कच्ची उमर में ही कमाठीपुरा और गोलपीठा की आज़ाद-आबाद गलियों में सीटियाँ बजाता फिरता है, और गर्मों के भयंकर रोग से क्षत-योनि बेगमों को 'एकदम नया माल' बताकर, नौसिखुओ को दरवाजा दिखा देता है—और यों बेगमों से, अपने और वस्ताद के लिए चरस और चाप-विरयानी का, खर्चा वसूल करता है।...

पोपट, जो सोला की कच्ची उमर में ही अतृप्ता-अप्रसूता सुहागिनों को गर्भाधान और फिलमिस्तान की पिक्चरों को देखने वाली हिरोइन-टाइप तरुण (किंतु, किन्हीं विशेष कारणों से अविवाहिता) मैडमों को गर्भपात की रीतियाँ बताता है।... पोपट फुट-पाथ और उर्वशी-लोक वाली बाइयों को 'बेगम' और हवेलियों से 'जानमालू' पोज में निकलने वाली बाइयों को 'मैडम' कहता है।...

पोपट, जिसने देश की लाखों गरीब सन्तानों की तरह न माँ-बाप का लाड़-दुलार पाया, न भाई-बहनों का नेह-बन्धन। जो माँ के अमिय-पयोधरों को दूधिल कर देने की उम्र में, वस्ताद के हाथ के बासी पाव-चालू चा में पला।... पोपट, जिसकी माँ पेट-भर अन्न के लिए सेठों के गुरखा-पठान वाचमनों को अपना जिसम बाँटती रही और जब अनचाहे-व्यभिचार की पूँजी पोपट के रूप में फुटपाथ पर गिरी, तो वह केवल एक बार उसके अबोले-अधरों की ऊष्मा पान कर, सदा के लिए (किसी लापरवाह सेठिया-बच्चे के हाथ से गिरी आइस-

क्रीस-सी) ठंडी पड़ गई ।.... जिस रात पोपट धरती पर फूल-सा और रामी की छाती पर वज्र-सा गिरा—उस रोज रामी नगीनभाई सेठ के यहाँ पाँच रुपए माँगने गई थी । नगीन भाई सेठ के यहाँ, जिन्होंने अपनी नामर्दी पर पर्दा डालने के लिए रामी के स्वामी रामदुलारे को अपनी विपुलवासनावती नर्मदा-बेन के लिए रखा और एक दिन चोरी का मिथ्या-आरोप लगाकर, नासिक सेण्ट्रल-जेल में भिजवा दिया, जहाँ वस्ताद उन दिनों 'पड़ना कभी ना बुरे फेल में, वरना, आना पड़ेगा नासिक जेल में ।' गाया करता था और रामदुलारे की कहानी सुनाया करता था ।...

नगीन भाई सेठ, जिन्होंने रामी को पाँच रुपए भी नहीं दिए, कि वह आतन्न-प्रसवा एक रात तो चैन ले सके । तब उस रात भी रामी को रहीमा पठान की बगल में सोना पड़ा था और जब अबोलें-शिशु को रक्तिम-साश्रु नयनों से निहार, रामी ने अपने रदत-चूते नयन हमेशा-हमेशा के लिए बंद कर लिए थे, उसकी भिन्नी मुठ्ठी खुल पड़ी थी, और सरकारी सिक्के—अशस्त-सरकार और सशक्त सेठों के मुँह पर थूक की तरह फुटपाथ पर बिखर गए थे ।...

और पोपट, जो वस्ताद की छाती से लगकर पला था । जिसे छाती से लगाने के बाद, बंकों में डाका मारने वाला 'कल्लन उस्ताद' केवल 'वस्ताद' रहकर, ईरानी होटलों में प्लेटें धोने लगा था, कि डाका मारने की कोशिश में कहीं जेल चला गया, तो उसके पोपट का क्या होगा ?.... तो, वही पोपट अब सोला का हो चुका !...

पोपट, जो अब राजकपूर-पद्धति और परम्परा में सिली पुरानी पतलून के फटे खीसे में फिलमी डिरामों की चौपड़ियाँ रखता है । फिलमी-डिरामों की चौपड़ियाँ, जिनके मुख-पृष्ठ पर स्पेशियली, केवल पोस्टरों में छापने के लिए, डाइ-रेक्टरों-प्रोड्यूसरों के गोपन-कक्षों में खींचे गए बेहया हीरो-हिरोइनों की बेहतरीन-अदा वाले फोटो छपे रहते हैं ।...

फोटो, जिन्हें खींचकर, फोटोग्राफर मस्ताना मिस्त्री 'डेइली-सेक्सुअल' बताते हुए, बिना 'थैंक्यू' कहे ही, प्रोड्यूसर के हाथ से सौ का पता खींच लेता है, और जिन्हें 'कुर्बान जाऊँ' कहकर चूमते हुए, वस्ताद कलेजे से लगा लेता है और—'मेरी जान' कहकर, बाँई आँख को बंद करके, सिरहाने रखकर, पोपट, घुटनों के बीच में सिर दिए, फुटपाथ पर महलों और मीना-बाजारों के हसीन-स्वाबों में

खो जाता है—“हाय, मेरी सुरैया !”...

×

×

×

चरस की चिलम के चारों ओर लँगोटी के चिथड़े की गोलो साफ़ी लपेट कर (दो में से एक गई, बाकी बची एक) आँख को चरस की चिलम के साथ ऊपर उठाते हुए, वस्ताद लटका भरता है--

“लगे दम, मिटे गम...”

डिरामे की चौपड़ी के वस्ताद के ‘कुर्बान जाऊँ’ वाले पेज को पलटकर, पोपट चट से चिलम अपने हाथ में थमा लेता है—“सटक, या अली, जिसने न उठाई चरस की कली—उस मरद से तिरिया भली !”

वस्ताद चिलम छीन लेता है—“अबे, तिरिया-तिरिया, तो बहुत कहता है, कलदर, मगर जानता भी है, कि तिरिया के कै भेद होते हैं ?”

“अंडे से मुर्गी बने सोला दरस हो चुके हैं, वस्ताद !” पोपट प्रामाणिकता पेश करता है, कि—“तिरिया के चार भेद होते हैं । पदमनी, चन्ननी, शंखिनी और हस्तनी !...इनमें से पदमनी और चन्ननी ‘उधार टाइप’ की याने कि ठंडी होती हैं । सिर्फ़ साधु-महात्मा और बनिया भाइयों के काम की ! औरत-में-औरत तो, हस्तनी और शंखिनी ! हस्तनी के पीरू ये बड़े, ये सख्त होते हैं, कि अम-रीकन चोलियों में भी न समाएँ, ज्यों-त्यों समाएँ भी, तो दर्जो की मिहनत बेकार कर दे । और .”

हस्तनी के उरोजों को पीरू (अमरूदों) की प्रयोगवादी उपमा से अलंकृत कर, पोपट शंखिनी के लक्षण ‘टमाटर-से गालों’ से शुरू करता है, कि वस्ताद टोक देता है—“बस, और बखिए मत उघाड़ अकिल के, चमचम ! कसम हाजी मलंग शा की, रह गया तू कबर-का-कबर में ही । गुरू की भक्ति बेकार चली गई । यह तो वही मिसल हुई, बेटे, कि बारा बरस दिल्ली में रहे, क्या किया, भाड़ झोंका ! मुन, पोपट, असिल में तिरिया के चार नहीं, सिर्फ़ दो भेद होते हैं ! .”

“कौन-कौन-से ?” गुरू की भगती से विमुख और आलोचना से बेखबर, पोपट चरस की कली और ऊँची उठा देता है ।

“मुन”, वस्ताद लँगोटी में पड़ी जूँ लँगोटी में ही पिचका देता है—“इस बम्बई में--जहाँ न फुटपालियों को चैन है, न महलों को ही आराम--

तिरिया के सिर्फ़ दो भेद होते हैं ।”

“कौन-कौन से ?” पोपट चरस की कली और अपने प्रश्न—दोनों को, फिर एक साथ ऊपर उठाता है ।

“सेठानी और घाटन !” वस्ताद, फतुई की फटी-जेब से नीचे कुद रही हिरोइन को पोपट की जवान नज़रों से बचाने की कोशिश करते हुए, कहता है—“पर, हाथीदाँत का बटन दिखाने से, हाथी को तू क्या खाक समझेगा ? तुझे तो बारीकी से समझाना पड़ेगा । सुन, तिरिया के जो दो भेद मैंने देखे-सुने, एक दिलचस्प किस्से के रूप में, तुझे सुनाता हूँ । बेटे, वस्ताद से मोहब्बत की यह बेजोड़ दास्ताँ, इसके-कामरानी का यह लाजवाब किस्सा सुन—और……”

जरा थमकर, वस्ताद चिलम के लिए हाथ बढ़ाता है, पर बेटा पोपट, चिलम की जगह, सवाल हाथ में थमा देता है—“वस्ताद, खाली हिंसिल ही देते रहोगे, या टरेन को आगे भी बढ़ाओगे ? टिकिट देखने से ही तो, सेनुमा का मज़ा आ नहीं जाता ?……”

और वस्ताद किस्सा यों शुरू करता है—

“सुन, कलन्दर !……देसाई भुवन, सातवाँ माला, कालवादेवी, मुंबई नं २, के ज्ञानदार फ्लैट में रहनेवाली सेठानी नर्मदाबेन और गाँव पिलखोली, पोस्ट-तालुका रेंसी, जिल्हा सातारा, हाल मुकाम मकन जी-बमन जी की चाल, खोली नं० पंधरा, भुलेश्वर, मुंबई नं० २, की गंगूबाई का यह किस्सा है ।

“पहली के पास दिल था, दिलदार थे, दौलत थी । दौलत के नशे में, उसने दिल भी गँवाया, दिलदार भी ।…… खज़ूर-छाप नोटों से उसने जिसम तो खरीदे, पर सच्ची मोहब्बत न खरीद सकी । सो, बेटे, एक दिन उसे कहना पड़ा—“गंगूबाई, तने नाणा केटला जोइए, मारा पास थी लई जा । जो तारी रहेवानी सगबड न होय, तो हूँ तने मारो बाँदरानो फलेंट आपीशूँ—पण, हूँ तारे पगे पड़ीशूँ तू करसन ने तारा प्रेम सा पड़वानी ना पाड़ी दे ।……” (गंगूबाई तुझे कितने रुपए चाहिये, मुझसे ले जा । तेरे रहने की व्यवस्था न हो, तो मैं तुझे अपना बाँदरा वाला फ्लैट दे दूँगी पर, तू करसन को अपने साथ प्यार करने से मना कर दे ।)

(गुजराती)

“दूसरी के पास सिर्फ़ दिल था, जिसे दाँव पर लगाकर, दिलदार और कलदार बटोरने के कई सुनहरी मौके उसके सामने आए, पर उसने ‘एक आणे

ला दोन-दोन आणेला तीन' केले तो बेचे, दिल न बेच सकी। नर्मदा बेन से बोली—'सेठानी बाई, मला ही तुमची दौलत नको, तो बाँदराचा फ्लॅट नको। तो माझा मनाचा मीत—तो करसन, करसन महाराजे गोविंदा, मला फक्त तोच पाहिजे।...' (सेठानी बाई, मुझे न तो तुम्हारे ये रुए ही चाहिए, न तुम्हारा वह बाँदरावाला फ्लॅट ही। वह मेरे मन का मीत—वह करसन, यानें मेरा गोविंदा मुझे तो सिर्फ वहीं चाहिए।) (मराठी)

पोपट कहता है—“वस्ताद, येच किस्सा, हमरे को लगता है, इस डिरामे की चोपड़ी-ऊपर फिल्म बनाएला है।... इसमें पण लिखा है, ‘जानमरू एन्ड जोबना फिल्मस लिमिटेड’ का निराला शाहकार ‘इश्के-कामरान-उर्फ-कनीज की कुदास्तान...’”

थोड़ा रुककर, पोपट ‘इश्के-कामरान-उर्फ-कनीज की दास्तान’ का वह स्ट्रीट-साँग, याने कि दिलचस्प नग्मा, गुनगुनाता है, जो ‘मैं तो पनिया भरन आई नीर...’ से शुरू होकर, ‘कैसा हो, सैया राजा, हो, बलभा राजा, हाए, हाए, हाए—अल्ला कसम, कैसा मारा जोबनवा का तीर।...’ पर खतम होता है।...

इसके बाद वह फिर डिरामे की चोपड़ी के पेज पलटता है—“वह बेगम थी। उसने अपनी सलतनत मोहब्बत के दाँव पर लगा दी। दूसरी ओर वह मामुली कनीज—उसके पास सिर्फ एक दिल था, मगर उसने उसे भी दाँव पर लगाने से इन्कार कर दिया।”

“और क्या क्या लिखा है, बेटे?” चिलम के लिए हाथ बढ़ाते हुए, वस्ताद पूछता है।

“लिखा है,” पोपट चरस की चिलम (‘ठंडी पड़ गई है,’ कहकर) उलटी कर देता है—“लिखा है, ‘आगे पें पर देखिए।’...”

—शैलेश मटियानी

रूस-चीन के क्रांतिकारियों का (मार्च-साँग) हरिगीतिका-छंद में गाने के बाद, जब क्रांतिकारी-कवि 'अंगार' जी बैठ गए, तो 'क्षीरद' जी ने, अपनी तेज आवाज के कोलाहल से माइक्रोफोन को कँपाते हुए, युग-युगान्तरों से खोई अपनी प्रेमिका को पुकारा—

“बहुत युग बीते, अभी बीतें—
अमर रहें तेरी-मेरी प्रीतें ।
यों ही रहे बसन्त-बहार—
जमाना हारे, हम जीतें ।”...

‘चाँद’ के नाम से ‘क्षीरद’ जी फिल्मों में गाने लिखा करते हैं । अक्सर फिल्म के लिए अनफिट हुए गीत में दो-चार हिन्दी के शब्द और लगाकर, उसे कवि-सम्मेलनी कविता बना लेते हैं । इसमें इन्हें कमाल हासिल है । औरतनुमा अपनी आवाज में, वह अपनी कविता को ऐसे फिल्मी-तरन्नुम से पढ़ते हैं, कि और कोई चाहे भूमे, न भूमे—वो माइक्रोफोन के चारों और भूमने लगते हैं । एक अजीब नशे में, जो न शराब का, न शबाब का । ‘क्षीरद’ जी अपनी कविता को, और लोग उनकी ‘एक्टिंग’ को पसन्द करते हैं—यों ‘क्षीरद’ जी बम्बई के एक लोक-प्रिय कवि सिद्ध हुए हैं ।

‘क्षीरद’ जी के बाद कुछ और मौसमी-कवियों को संयोजक ‘बन-वारी’ जी ने मंच पर बुलाया । ये कवि सिर्फ कवि-सम्मेलनों के दौर

में ही पैदा होते हैं। जैसे खटमल सर्दी आने पर सूख जाते हैं, और गर्मियों में फिर उनमें स्वयमेव प्राण-प्रतिष्ठा हो जाती है—ठीक यों ही, ये कवि मुशायरों-सम्मेलनों के खतम होने पर खतम और आयोजित होने पर पैदा होते हैं।...

इनमें से एक श्री 'हृदय' हैं—जब कविता पढ़ते हैं, बस, अपने हृदय को आगे की कुर्सियों पर बैठी कालेज की लड़कियों और कवि-सम्मेलन के निमन्त्रण-पत्रों को 'टाइप' करने वाली टाइपिस्ट नाजनीनों की खिदमत में ऐसे पेश करते हैं, जैसे कोई 'बेयरा' अपने 'साहिब' के आगे चिकन-करी की प्लेट पेश करता है। कविता में चन्द्रमा का जिक्र आने पर 'गवाही देगा चाँद' कहते हुए, वो अपने हाथों को, आकाश की बजाय, सामने की ओर तानते हैं, और लापरवाह नाजनीनें अपने पहने-न-पहने ब्लाउजों पर एक सरसरी निगाह डाल लेती हैं और फिर किसी-किसी को खाँसी आ जाती है।

'हृदय' जी 'सम्मेलनों' में 'हृदय' और 'मुशायरों' में 'जिगर' के नाम से कविता-शायरी गाते हैं। पहले-पहले वो बाँदरा के उर्स (मेले) का मुशायरा 'ज्वाइन' करते थे, अब उनकी पहुँच कवि-सम्मेलनों और कवियों के विशेष आशिकों बड़े-बड़े महलों के मालिक-मालकिनों तक हो गई है, जो सम्मेलन-मुशायरों को किसी अश्लील-सिनेमा के 'चैरिटी-शो' की तरह देखते-सुनते हैं।

'हृदय' जी बाँदरा के उर्स-मुशायरों और चौपाटी के ओपन एयर कवि-सम्मेलनों के दौर से गुजरते-गुजरते, 'परसनल-गोष्ठियों' तक में जाने लगे हैं, जिन 'परसनल'-गोष्ठियों में सेठजी कवि-शायरों की कविता-शायरी में 'ताकत की गोलियों' का असर ढूँढते हैं और सेठानियाँ कविता-शायरी की परख कवि के ताम्बूल-रंजित अधरों, आवारा बादलों-से बालों और जिस्माना-खूबसूरती-तन्दुरुस्ती से करती हैं!.....

'हृदय' जी ने एक बार मंच के ठीक सामने कोच पर बैठे, सेठ

नगीनभाई देसाई की ओर देखा—ठीक ऐसे ही, जैसे कोई भिखारी उस होटल के मालिक की ओर देखता है, जिसके यहाँ बासी खाना भिखारियों में बाँट दिया जाता है ।.....

नगीनभाई सेठ के होठों में एक मुस्कुराहट-सी फैल चुकी, तो ‘हृदय’ जी ने, सारी उपस्थिति को बिसार, अपनी परसनल-गोष्ठी वाली कविता शुरू की—

“थोड़ा-थोड़ा भूम चुके हो,
और भूमना मुझसे सीखो !.....
अपने होठों की मस्ती को
और चूमना मुझसे सीखो ।.....
मैं यौवन के तेज नशे में.....”

‘बनवारी’ जी ने और कवियों को हँसी दाबते, लड़कियों को खाँसते और कुछ प्रौढ़ सज्जनों को मुँह बनाते देखा, तो धीरे से ‘हृदय’ जी की ‘बुश-शर्ट’ का कोना खींचा और ‘माइक’ पर अपना मुँह ले जाके बोले—“अब इस मुक्तक के बाद, ‘हृदय’ जी आपको अपनी ‘सघन रात की सुघर चाँदनी’ वाली प्यारी-प्यारी कविता सुनाएँगे ।.....” पर, बात को ठीक से न समझ, ‘हृदय’ जी यह कहते हुए, एक ओर हट गए—“ ‘और भूमना’ वाली कविता नहीं पढ़ने दी आपने ? यह कोई मुक्तक है क्या ? सेठजी को पढ़कर सुना चुका हूँ, पूरे डेढ़ सौ लाइनों की है !”—और उन्होंने सामने की कोच पर बैठे नगीनभाई सेठ की ओर देखा । सेठजी अब भी मुस्करा रहे थे । सहसा, उन्होंने वहीं से प्रश्न किया—“शूँ, बनवारीलालजी ! ‘एनी और भूमना’ वाली शायरी माँ शूँ खोट छे ?”

“बनवारी’ जी सकपकाकर, कवियों और श्रोताओं का मुख देखने लगे । नगीनभाई सेठ ने इस कवि-सम्मेलन के लिए एक-सौ एक रुपए चन्दा दिया था । कवि-सम्मेलनों और मुशायरों के वे ही एक मजबूत पिलर थे । खुद चन्दा देते थे, अपने दोस्त सेठों से दिलाते थे । उनके

प्रश्न की अवहेलना न की जा सकती थी। और 'हृदय' जी सेठ साहब के परसनल-कवियों में से थे। उनकी 'और भूमना'... कविता में खोट बताने का अर्थ था, अगले कवि-सम्मेलनों के लिए प्राप्त की जा सकने वाली एक मोटी रकम से हाथ धोना.....।

और, पान लगाने के सिवा, 'आउट-साइड-इनकम' का एक यही जरिया 'बनवारी' जी के हाथ में था, कि वो कवि-सम्मेलनों और गोष्ठियों का यदा-कदा आयोजन करते रहते थे। और जैसे चैरिटी-शो और संस्था-सहायता फंड के भंडे के नीचे चलने वाले सिनेमा-नाटकों की 'इनकम' का नब्बे-प्रतिशत (संस्था की जगह), मैनेजरो की जेब में जाता है, ऐसे ही, कवि-सम्मेलनों से एक अच्छी-खासी रकम 'बनवारी' जी के हाथ लगती थी। हर कवि-सम्मेलन उनके लिए एक चैरिटी-शो होता था।

मंच पर बैठे हुए कवियों को आनन्द आ रहा था और वो अपना-अपना गाना तैयार कर रहे थे। कोचों पर बैठे सभी सेठों के मुंह पर नगीनभाई का प्रश्न—'और भूमना' शायरी माँ शूँ खोट छे?—संक्रामक रोग-सा फैल गया था और सेठानियाँ कानों का इत्र-फाया नाक तक लाने लगी थीं। पीछे की कुर्सियों पर बैठे खैराती-श्रोतागण सीटियाँ देने लगे थे और तालियाँ बजाने के वहाने आगे-पीछे बैठी महिलाओं को छूने लगे थे। उनमें से अधिकांश ऐसे थे, जो किसी लीडर का लेक्चर सुनने, मंदिर में दर्शन करने और कवि-सम्मेलन या मुशायरा 'देखने' सिर्फ एक ही मकसद लेकर जाते हैं।

'बनवारी' जी परेशान हो गए। कुछ कहें, पर क्या कहें? 'माइक' तक मुंह लेजाकर चुप रह जाते थे। माथे पर पसीना आ गया था। .. तभी 'माइक' ने एक सुरिले कंठ का स्वर गुंजा दिया—

“जरा चुप रहो, कोलाहल से सपनों का अभिसार न छीनो।

मँभराती गलहार न छीनो,

मुझसे मेरा प्यार न छीनो,

मेरी इन दुखिया-साँसों से जीने का आधार न छीनो.....!”

...एक अपूर्व मिठास थी कंठ-स्वर में, एक मीठा-मीठा तरन्तुम था और एक तन्मय भाव-सत्ता थी गीत में। तालियाँ-सीटियाँ थम गईं। सेठों की मुखाकृतियाँ प्रकृतिस्थ हो गईं। सेठानियों ने फाए हाथ में थमे रहने दिए।.....

और उस दिन का कवि सम्मेलन ‘बनवारी’ जी के नाम को रोशन कर गया। सेठ नगीनभाई ने, सम्मेलन की समाप्ति से पूर्व, एक सौ-एक रुपए, अपनी ‘नगीना-नर्मदा क्लॉथ-मिल्स’ के लिफाफे में बन्द करके, ‘हृदय’ जी का नाम लिखकर, ‘बनवारी’ जी के पास चपरासी-द्वारा भिजवाए—पर अगली कोच पर बैठी नर्मदाबेन ने चपरासी से लिफाफा लेकर यों लिखा—“मेहरबानी करीने तमारा नवा शायर ने आपो, जेणे ‘मुझसे प्यार न छीनो’ वाली शायरी कीधी छे।”^१.....और ‘हृदय’ जी का नाम काट दिया।

‘बनवारी’ जी कवि-सम्मेलन की समाप्ति की घोषणा करते हुए, सोल्लास बोले—“एक खुशखबरी और सुनिए। आज के कवि-सम्मेलन को चार-चाँद लगाने वाले, हमारे मीठे-मीठे गायक कवि श्री ‘कृष्ण’ जी को सम्मेलन की आदरणीया अतिथि श्रीमती नर्मदा नगीनभाई सेठ ने एक-सौ-एक रुपए पुरस्कार-स्वरूप दिए हैं। मैं कविता-संगम की ओर से उन्हें धन्यवाद देता हूँ।”...

हाँल एक बार फिर तालियों की गड़गड़ाहट से मुखर हो गया—
हेयर ! हेयर !.....

शोर-गुल की नजरें बचाकर, नगीनभाई सेठ ने नर्मदाबेन की ओर देखा और नर्मदाबेन कवि ‘कृष्ण’ को देख रही थीं। सेठजी की ओर मुड़कर, बोली—“बहु सारी शायरी लखे छे”^२.....

१. कृपया, ये रुपए अपने नए कवि को दीजिए, जिसने ‘मुझसे, प्यार न छीनो’ कविता पढ़ी है.....

२. बड़ी अच्छी कविता लिखता है।

×

×

×

“एक मिनिट, वस्ताद !” पोपट बोला—“जिस ‘इश्के-कामरान उर्फ कनीज की दास्तान’ फिल्म का अपन आपसे जिकर किया था—शुरू-शुरू की सीनेरी में, बगदाद के शहेन्शाह के दरबार में भी एक मुशायरा होता है। उसमें, बाद बुजुर्गों के, एक नवीन शायर आता है। पेश आते हुए, वह आदाब बजाता है और आदाब बजाते हुए, उसकी नजर शहेजादी गुलबदन से टकराती है।... (एक मिनिट, वस्ताद।... यहाँ पर डीरेक्टर इंशाअली ने नजरों के वो जादू पेश किए हैं, जिन्हें ‘किलोजप’ कहते हैं।)...”

“किलोजप किसे कहते हैं, बेटे ?”—वस्ताद ने पोपट की जानकारी को सलाम भुकाया।

“‘किलोजप’ कई तरह के होते हैं, वस्ताद, !” पोपट बोला—“अभी आपसे क्या छुपाएँ। हाजी मलंगशा’ के दरबार में जाने के बहाने आपसे दूर, अपन इसी फिल्म में काम करने गया था, ‘एकसटरा’ का रोल किया था। जभी शहेजादी गुलबदन नजरों का ‘किलोजप’ देती थी, तभी अपन, केमरा आगे-पीछे सरकाने में, फोटोग्राफर मस्ताना मिस्त्री का मदद करता था।... तो, वस्ताद, तिरिया के भेदों की तरह, ‘किलोजप’ के भी कई भेद होते हैं। जैसे, हिरोइन हँस रही हो, तो ‘किलोजप’ में वह एक हसीन धूप-सी दिखाई देगी और रोएगी, तो ‘किलोजप’ में उसके आँसू पेड़ से अमरूद की तरह गिरते दिखाई देंगे।... मोहब्बत की सीनेरी में पलकों को ऊपर उठाएगी, नीचे गिराएगी, तो इतने ‘टैम’ से, कि रुपए में एक आना फिल्म इसी में चली जाएगी।...”

पोपट रुका। फिर बोला—“अपन मुशायरे की बात कह रहा था। नवीन शायर, एक खामोश म्यूझिक के साथ, अपनी शायरी पढ़ता है—

“रवाँ-ए-अश्क को सीने में आग कहते हैं...”

नजर मिलाके, उसे दिल का दाग कहते हैं...
 सुना है जबसे, के परवाने हसीं होते हैं...
 हमारे वो हैं, के खुद को चिराग कहते हैं।।...”

“यहाँ, इस सीनेरी के बाद, शहेजादी गुलबदन और महफ़िल में जल रहे चिरागों का ‘किलोजप’ पेश किया जाता है। और डीरेक्टर इंशाअली का कमाल देखिए, इस सीनेरी के ‘डिराप’ होते ही, शहेजादी गुलबदन अपने जरीदार पलँग पर बैचेनी से करवटें बदलती नज़र आती है। फिर उसे एक हसीन ख्वाब आता है—नवीन शायर काम-रान उसके दामन को चूम लेता है, और दोनों आसमान की ओर उड़ते हुए गाते हैं ‘मदमस्त समाँ, मौसम है जवाँ—आज बसायेंगे, मोहब्बत का जहाँ’... और गाना खतम होने पर, शहेजादी गुलबदन फिर बैचेनी से करवटें बदलती नजर आती है...”

पोपट ने पेंतरा बदला। चिलम जागृत करने के लिए, चरस को सिगरेट के धूसे में मिलाया। फिर वस्ताद की लँगोटी के छोर की साफ़ी गीली की। वस्ताद को माचिस लगाने का इशारा कर, चिलम साफ़ी में लपेट, मुँह से ७५° का कोण बनाती लगाई। वस्ताद चिलम को माचिस देते रहे। पोपट हल्के-हल्के कश खींचता रहा। जब तीसरी माचिस दे चुके वस्ताद, तो पोपट ने सटाक से लटका भरा—

“बम-बम... न जीने की खुशी, न मरने का गम। सटक, शंभू की बूटी में काहे की अटक ! चल शंभू की शरन को, उसीने दिया तन को, वही देगा कफ़न को।... या अली, तेरे बंदे गली-गली, न किसी की खरी-खोटी, न किसी की भली।... चली-चली... तेरे नाम की चिलम चली।...”

और पूरी ताकत से कश खींचकर, चरस की नली बालिस्त-भर ऊपर उठाकर, मर्दों की लिस्ट में अपना नाम दर्ज करवा लिया और चिलम वस्ताद के हाथ में थमाते हुए, गले की तनी हुई नसों को दोनों हाथ की अँगुलियों से सहलाने लगा।

वस्ताद हल्के-हल्के कश खींचते रहे ।

पोपट, अपने नम्बर की प्रतीक्षा करता हुआ, फिर बोला—“और एक दिन जब शहेजादी गुलबदन का निकाह तलवार के धनी शाहे-अरब से हो गया, तो शायरी का गुरु वह कामरान चाँदनी रातों में दर्द के गाने गुनगुनाता रहा और शहेजादी... (माफ करना, वस्ताद) ! बेगम गुलबदन शाहे-अरब के शानदार महल की खिड़की से, मस्ताना मिस्त्री के बनाए नकली चाँद-सितारों को हसरत की निगाहों से देखते हुए, पाउडर वाला के सटोर की गिलसरीन लगाकर, ‘किलोजप’ के ये बड़े-बड़े, अमरूद-सरीखे आँसू फेंकती रही—

“रात हसीं, मौसम है जवाँ

सनम, तू कहाँ ? सनम तू कहाँ ?

तू कहाँ ? तू कहाँ ? तू कहाँ ?”...

इस ‘तू कहाँ ?’ के लिए म्यूझिक इतने जोर का दिया गया है, कि सितारों-बैलनों के तार टूट-टूट रहे थे, और लता बाई गले की नसों को दबा-दबा कर गाती थी... ‘तू कहाँ ? तू कहाँ ? तू कहाँ ?...’...

२

बड़े भाई के आने का समय होते देख, चाँद अपनी रखेल रात को बेभान, अलमस्त सेज-सोई छोड़ गया था ।...

कालबादेवी की गलियों में, दातून वालियों और दूधवालों की हाँकें अबेर सोई कांताओं की अँगड़ाइयाँ-भरी गालियाँ बटोरने लगी थीं—

“शी मुसीबत छे ! धणी^१ तो लास्ट-शो सिनेमा जोईने, पान-तम्बाकू खातो-खातो बे बागे घेर आवे, अने पछी चार बागे सुधी ‘नाकाम नी टिंगल’ करतो फरे...अने, ए भैया लोको बनारस-बरेली क्याँ-क्याँ थी मुंबई आवी गया...जरीक आँखड़ियो लागे, त्यारे ज बूम पाड़वानी शुरूवात करी दे...‘दूध वाला...दूध वाला !’...ऐ लोकोना भेंसों ने हैजो परा न थाय^२ !.....”

जिन सटोरियों के पुंसत्व को भी सट्टा चाट गया है, उनकी बाइयाँ इस आवाज़ को, अपनी लावारिश जवानी के लिए, रामतीर्थ ब्राह्मी तेल की तरह इस्तेमाल करने की आदी हो गई हैं।...

“दूधवाला !...दूधवाला !...”

“दातन ले लो, जी ! आना मा बे-बे...^३!”

सेठानी नर्मदाबेन ने देसाई भुवन के सातवें माले पर करवट बदली। रात को नींद, शायद, नहीं आई थी। शायद, आई हो। नर्मदा बेन को कुछ याद नहीं आ रहा था। तन अलसा रहा था। मन भारी लग रहा था। सपने देखे थे, तो याद नहीं आ रहे थे। शायद, न देखे हों, एक वहम-सा रह गया हो।...

नींद आई, न आई...सपने देखे, न देखे...सेठानी नर्मदाबेन के जीवन में वहम के ये अलसाए क्षण यदा-कदा आते रहे हैं। जैसे ठीक-ठीक सुबह होने से पहले, कुछ अंधेरा भी रहता है, कुछ उजाला भी।

१. पति ।

२. क्या मुसीबत है। पति तो लास्ट शो सिनेमा देखकर, पान-तम्बाकू खाते-खाते, रात के दो बजे घर आते हैं और फिर चार बजे तक ‘बेकार की छेड़-छाड़’ करते रहते हैं—और ये दूधवाले न-जाने बनारस-बरेली कौन-कौन शहर से बम्बई आ गए, जरा आँखें लगीं नहीं, कि चिल्लाना शुरू कर देते हैं—‘दूध-वाला ! दूधवाला !...’ इन लोगों की भेंसों को हैजा भी नहीं होता !...

३. दो-दो ।

जैसे किसी धार्मिक नाटक के हर दृश्य के बाद पर्दा नीचे गिरता है और घंटी बजती रहती है और पर्दे के अन्दर नए 'सीन' की तैयारी होती रहती है।

ऐसे वहमी-क्षणों में, नर्मदाबेन न आ रही अँगड़ाइयों को बार-बार लेती है, जम्हाइयाँ लेने के लिए, अपने रेशमी रुमाल से होठों को देर तक थपथपाती रहती है, और इस दौर में, उसका मन, याद की तेज घोड़ी पर बैठा-बैठा, अतीत के पड़ावों तक सैर कर आता है।...

उन दिनों की बात है, जब नर्मदाबेन, कुमारी नर्मदा जवेरी के रूप में, बम्बई के चेलाराम कालेज में पढ़ती थी। सह-शिक्षा की खुली आबहवा में, एक फूल जूड़े में लगाकर, सौ जगह खुशबू बिखेरती थी। जिस साल नर्मदा ने बी० ए० सीनियर किया, उस साल कालेज के दो-सौ अट्ठासी छात्रों में से, सिर्फ एक-सौ अड़तीस पास हुए थे।...

फेल होने वालों की लिस्ट में एक नाम चन्द्रकान्त दोषी का भी था। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में अपना रोल नम्बर न पाकर, वह सीधे नर्मदा के पास आया—“हैं तो नाकाम थई गयो, तमे मारी सौथी बधु बधाइयो स्वीकारो।”...उसकी आँखों में आँसू आ गए थे।

नर्मदा हँसकर, बोली—“मदै छताँ रडो छो ?”

चन्द्रकान्त बोला—“हाँ, मर्द, होते हुए भी रो रहा हूँ, नर्मद !... इसलिए नहीं, कि फेल हो गया हूँ, बल्कि इसलिए, कि यूनिवर्सिटी ज्वाइन नहीं कर सकूँगा।...तुम्हारा साथ न पा सकूँगा, तुम्हारा प्यार न पा सकूँगा, नर्मद !...” और चन्द्रकान्त ने नर्मदा की गोरी-उजली हथेलियों को चकमक-सा रगड़ना शुरू किया—“नशा कम होने पर खुमार और साथ कम होने पर प्यार घट जाता है, जवेरी ! कहीं ऐसा न हो, मैं तुम्हें हमेशा-हमेशा के लिए खो दूँ ? सोचो, जवेरी !...नर्मदा, नदी यदि एकदम विपरीत दिशा की ओर बहने लगे, तो उस दिशा का क्या होगा, जिसके आँचल में रहने वाले इन्सान ही नहीं, पशु-पक्षी भी उसी के सहारे जीते हैं ?...मेरी जीवन-दिशा से विपरीत होकर,

तुम न जाओ, नर्मदा !...मैं प्यासे पपीहे की तरह तड़फ-तड़फ कर मर जाऊँगा ।...जवेरी, मैं बिना मौत मर जाऊँगा ।...

उसके मुँह को अपने सीने से लगाती हुई, नर्मदा जवेरी बोली—
“तुम ‘ज्योग्रेफी’ में फेल हुए हो ना ? होते क्यों नहीं ?...तुम्हें इतना भी तो पता नहीं, कि नर्मदा कभी दिशा नहीं बदलती ।...तुम्हें मेरे प्यार पर, मुझ पर जरा-सा भी भरोसा नहीं, कान्त ? कालेज और यूनीवर्सिटी की दूरी क्या हमारे प्यार के लिए सात समन्दर बन जाएगी ?...”

नर्मदा के अनाँचल सीने से लगा, चन्द्रकान्त बोला—“भरोसा तुम पर तो है, जवेरी !...पर जमाने पर नहीं । जमाने के दस्तूरों पर नहीं । प्यार के पहरेदारों पर नहीं । इस जमाने में, मेरी नर्मदा, प्यार को ‘रिसीव’ करने वाले और ‘गाइड’ करने वाले अलग-अलग हैं । प्यार पूर्व की ओर पग बढ़ाता है, परिस्थितियों और प्रतिबन्धों का बवंडर उसे पश्चिम की ओर धकेल देता है ।”

सहसा नर्मदा खिलखिलाकर, खुलकर हँस पड़ी—“ ‘प्यार’ पर ‘थिसीस’ लिखके, पी० एच० डी० कर लो, कान्त ! फिर प्रोफेसर होके, यूनीवर्सिटी में आ जाना । मैं तुम्हारे इंतजार में फेल होती रहूँगी ।”

“एवू हास-परिहास कालेज नी रूमानी जिन्दगी माँज सारूँ लागे ।” कहते हुए, चन्द्रकान्त ने फिर नर्मदा का हाथ अपने हाथों में ले लिया—“तुम एक करोड़पति पिता की बेटी हो, जवेरी ! तुम्हारे पिताजी तुम्हें किसी करोड़पति को ही सौंपना पसन्द करेंगे ।...मेरे पिताजी तो मुझे गाँठिया-पापड़ी का होटल चला-चलाकर पढ़ा रहे हैं ।...और, जवेरी, तुम भी तो ऊँचे-ऊँचे महलों में रहना पसन्द करोगी ? वैभव-विलास की दुनिया का आकर्षण सहज ही ठुकराया तो जा नहीं

१. ऐसा हास-परिहास तो कालेज की प्यार-भरी जिन्दगी में ही मधुर लगता है ।

सकता ?...”

चन्द्रकान्त की हर बात बाण से बिंधी चिड़िया-सी नर्मदा के कानों में तड़फ-तड़फ कर गिर रही थी। कालेज के दिनों का जुड़ा प्रणय-सूत्र टूटता लग रहा था उसे। अपने मन की बातें कह पाने के अवसर भी, शायद, अब कम ही हाथ आएँ ?

नर्मदा फिर हँस पड़ी—“एक बार तुम फिर हिन्दुस्तान की ‘हिस्ट्री’ और ‘ज्याग्रेफी’ पढ़ो, दोषी !...तब तुम्हें मालूम होगा, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों और चट्टानों के बीच से बहने की अभ्यासी नर्मदा, मैदानों में बहने के लालच से, गंगा-यमुना की सौत नहीं बनती है।...तुम्हारी नर्मद प्यार की भूखी है, कान्त ! पैसे की नहीं।...” नर्मदा के स्वर में एक संकल्प था, एक प्रखरता थी।

चन्द्रकान्त की आँखें डबडबा आई—“जवेरी, तुम्हारे प्यार की परीक्षा में पास हो कर, मैंने अपनी जिन्दगी में कामयाबी और कामनाओं की सबसे ऊँची डिग्री हासिल कर ली है।...बी० ए० में फेल होने का गम चला गया है...और उसने नर्मदा की ओर होंठ बढ़ा दिए।...”

नर्मदा ने उसके होठों पर अपने हाथ का रुमाल रख दिया—“जिन्दगी की ‘फाइनल’ में पास होने के लिए मिठाई न खिलाओगे, कान्त ?...”

×

×

×

समय का नवाब दिनों के कबूतर उड़ाता रहा।...

आँखों को चकाचौंध कर देने वाले जश्नों के बीच, फूल-हारों से लदी कार में नर्मदाबेन नगीनभाई सेठ की बाई बगल बैठी थी। भुलेश्वर के पास घनी भीड़, सँकरे रास्ते के कारण कार जरा थमी, तो किसी ने फूलों का एक खूबसूरत गुच्छा, कार की खिड़की से नर्मदा बेन की ओर बढ़ा दिया। नर्मदा को ऐसा लगा, जैसे उसकी कार के चारों ओर लगे सारे बल्ब बुझ गए हैं, सारे फूल मुर्झा गए हैं। उसने काँपते हाथों से गुलदस्ता थामने की चेष्टा की, तो नगीनभाई ने ‘थैंक

यू' कहते हुए, खुद ले लिया। सूँघा, और यह कहते हुए खिड़की से दूसरी ओर फेंक दिया—“जे लोको गुलदस्तो आपवा आवे छे ते ओना मन मा घणा कंटको रहेशे।”

नर्मदा ने गोद में गिर गए लिफाफे को ढाँप लिया, आँचल ठोक करने के बहाने। और जब अपने सुहाग-कक्ष में अकेली रही, तो उसने लिफाफा सावधानी से खोला। इतना ही लिखा था—

“जवेरी, तारी मोहब्बत ने हूँ जिन्दगी नी—‘फाइनल’ समझी ने, मगरूर बनी ने प्यार ना नगमोनी तारारीं-तारारीं करतो फरतो हतो। पण, एतो फकत एक इंटरव्यूज हती, जे मा परीक्षा मा कँई बीजो बेसे, अने पास कँई बीजो थाय।^१...

नीचे एक नदी का चित्र बना था, जो पहाड़ों-चट्टानों से लौटकर, मैदानों की ओर बह रही थी और उसके किनारे पर एक पत्थर बना था, जिस पर से होती कोई लहर चली गई थी और अब वह सूख रहा था। पत्थर के गीले भाग को पेन की स्याही से ‘शेड’ दी गई थी और सूखे भाग में लिखा हुआ था—“हमेशा फेलियोरज’ रहयो।^३...

चन्द्रकान्त दोषी।”

.. और सुहाग-समर्पण की उस रात, नर्मदा ने जिन्दगी में पहली बार एक ऐसी व्यथा अनुभव की, कि उसकी आँखों से आँसू चू पड़े... टप्...टप्...टप्...

१. जो लोग गुलदस्ते भेंट करने आते हैं, उनके हृदय में बहुत कटि रहते हैं। ..

२. जवेरी, तेरी मुहब्बत को मैं अपनी जिन्दगी की ‘फाइनल’ समझकर, गर्बित हो, प्यार के गीतों की तारारों-तारारों करता फिरता था। पर यह तो महज एक ‘इंटरव्यू’ थी, जिसमें परीक्षा कोई और देता है, पास कोई और होता है।...

३. हमेशा फेलियर ही रहा।”

सकता ?...”

चन्द्रकान्त की हर बात बाण से बिंधी चिड़िया-सी नर्मदा के कानों में तड़फ-तड़फ कर गिर रही थी। कालेज के दिनों का जुड़ा प्रणय-सूत्र टूटता लग रहा था उसे। अपने मन की बातें कह पाने के अवसर भी, शायद, अब कम ही हाथ आएँ ?

नर्मदा फिर हँस पड़ी—“एक बार तुम फिर हिन्दुस्तान की ‘हिस्ट्री’ और ‘ज्याग्रेफी’ पढ़ो, दोषी !...तब तुम्हें मालूम होगा, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों और चट्टानों के बीच से बहने की अभ्यासी नर्मदा, मैदानों में बहने के लालच से, गंगा-यमुना की सौत नहीं बनती है।...तुम्हारी नर्मदा प्यार की भूखी है, कान्त ! पैसे की नहीं।...” नर्मदा के स्वर में एक संकल्प था, एक प्रखरता थी।

चन्द्रकान्त की आँखें डबडबा आई—“जवेरी, तुम्हारे प्यार की परीक्षा में पास हो कर, मैंने अपनी जिन्दगी में कामयाबी और कामनाओं की सबसे ऊँची डिग्री हासिल कर ली है।...बी० ए० में फेल होने का गम चला गया है...और उसने नर्मदा की ओर होंठ बढ़ा दिए।...”

नर्मदा ने उसके होठों पर अपने हाथ का रुमाल रख दिया—“जिन्दगी की ‘फाइनल’ में पास होने के लिए मिठाई न खिलाओगे, कान्त ?...”

×

×

×

समय का नवाब दिनों के कबूतर उड़ाता रहा।...

आँखों को चकाचौंध कर देने वाले जश्नों के बीच, फूल-हारों से लदी कार में नर्मदाबेन नगीनभाई सेठ की बाई बगल बैठी थी। भुलेश्वर के पास घनी भीड़, सँकरे रास्ते के कारण कार जरा थमी, तो किसी ने फूलों का एक खूबसूरत गुच्छा, कार की खिड़की से नर्मदा बेन की ओर बढ़ा दिया। नर्मदा को ऐसा लगा, जैसे उसकी कार के चारों ओर लगे सारे बल्ब बुझ गए हैं, सारे फूल मुर्झा गए हैं। उसने काँपते हाथों से गुलदस्ता थामने की चेष्टा की, तो नगीनभाई ने ‘थैंक

यू' कहते हुए, खुद ले लिया। सूँघा, और यह कहते हुए खिड़की से दूसरी ओर फेंक दिया—“जे लोको गुलदस्तो आपवा आवे छे ते ओना मन मा घणा कंटको रहेशे।”

नर्मदा ने गोद में गिर गए लिफाफे को ढाँप लिया, आँचल ठोक करने के बहाने। और जब अपने सुहाग-कक्ष में अकेली रही, तो उसने लिफाफा सावधानी से खोला। इतना ही लिखा था—

“जवेरी, तारी मोहब्बत ने हूँ जिन्दगी नी—‘फाइनल’ समझी ने, मगरूर बनी ने प्यार ना नगमोनी तारारिँ-तारारिँ करतो फरतो हतो। पण, एतो फकत एक इंटरव्यूज हती, जे मा परीक्षा मा कँई बीजो बेसे, अने पास कँई बीजो थाय।^२...”

नीचे एक नदी का चित्र बना था, जो पहाड़ों-चट्टानों से लौटकर, मैदानों की ओर बह रही थी और उसके किनारे पर एक पत्थर बना था, जिस पर से होती कोई लहर चली गई थी और अब वह सूख रहा था। पत्थर के गीले भाग को पेन की स्याही से ‘शेड’ दी गई थी और सूखे भाग में लिखा हुआ था—“हमेशा फेलियोरज’ रहयो।^३...

चन्द्रकान्त दोषी।”

.. और सुहाग-समर्पण की उस रात, नर्मदा ने जिन्दगी में पहली बार एक ऐसी व्यथा अनुभव की, कि उसकी आँखों से आँसू चू पड़े... टप्...टप्...टप्...

१. जो लोग गुलदस्ते भेंट करने आते हैं, उनके हृदय में बहुत कटि रहते हैं। ..

२. जवेरी, तेरी मुहब्बत को मैं अपनी जिन्दगी की ‘फाइनल’ समझकर, गबित हो, प्यार के गीतों की तारारिँ-तारारिँ करता फिरता था। पर यह तो महज एक ‘इंटरव्यू’ थी, जिसमें परीक्षा कोई और देता है, पास कोई और होता है।...

३. हमेशा फेलियर ही रहा।”

ये नर्मदा के पहले आँसू थे। जैसे पहली प्रसूति के समय माँ अपेक्षया अधिक दुसह-वेदना अनुभव करती है, ऐसे ही नर्मदा को ऐसा लग रहा था, कमरे में लाइट बहुत तेज है और उसकी गर्मी से या उसके आँसू, या उसके कपोल दहक रहे हैं।... उसने उठकर सारी बत्तियाँ बुझा दीं। सिर्फ एक हरी रोशनी वाला बल्ब जलता रहा। उसी में नर्मदा अपनी आँखों को केन्द्रित किए रही... 'काफे-ईरान' के 'सीक्रेट-रूम' में भी एक रात्रि के प्रथम प्रहर, ऐसी हरी रोशनी वाला बल्ब दो घंटे की अवधि-भर जलता रहा था... जब उसकी यौवन-कली की पँखुरियाँ प्रथम बार उघरी थीं और... और...

हरी रोशनी वाले बल्ब पर नजर टिकाए-टिकाए ही नर्मदा ने देखा-उसके रूप-यौवन और जीवन के असली और कानूनी स्वामी नगीनभाई सेठ उसके करीब आ रहे हैं। मुँह में न जाने कितने पान ठुँसे हुए हैं, कि नगीन भाई नर्मदा को देखकर, मुस्कुराना चाहते हैं, पर सिर्फ पीक, होठों पर होती हुई, उनके बढ़िया रेशमी कुर्ते पर बिखर जाती है।

नगीनभाई नर्मदा के और करीब, और करीब आते गए... नर्मदा उन्हें ऐसे देखे जा रही थी, जैसे अपने रूप-यौवन के चितरे को नहीं, किसी बेवकूफ मदारी को कौतूहल-वश देख रही हो, जो हमेशा बाँसुरी के मीठे-मीठे स्वरों के तरन्नुम में नाचने की आदी बंदरिया रानी को सिर्फ जमीन पर बाँस का मोटा-खोखला डंडा ठोंककर, नाचना चाहता हो।...

उसे कान्त का सुघर-स्वस्थ मुखड़ा याद आ गया। कैसा तेज था, उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में? कितना सम्मोहन था, कि नर्मदा नैतिकता की दीवार अनजाने ही लाँघ गई थी। कान्त के पौरुषेय-सौन्दर्य ने उसके कौमार्य को जब पहली बार अपने में आत्मस्थ कर लिया था... उस अमर-क्षण का वातावरण आज फिर नर्मदा की आँखों आगे साकार हो आया... और उसने नगीनभाई सेठ की ओर बाँहें फैलाई... नगीन भाई सेठ के होंठ और आगे बढ़े, मगर, पहली बार के प्रयत्न में उनकी

आगे निकली हुई तौंद धोखा दे गई और दूसरी बार के प्रयत्न तक नर्मदा अपने मुँह पर घूँघट डाल चुकी थी ।”

उसे पहली बार महसूस हुआ, कि रोशनी-रोशनी में फर्क होता है और उसने हरा बल्ब बुझाकर, दूसरे कई बुझे हुए बल्ब जला दिए” और नगीनभाई को लगा, उनकी तकदीर का सिगनलमैन बिजनिस के मामले में तो उनकी कामयाबी की ‘फ्रंटीयर’ को हमेशा हरी झंडी, हरी रोशनी दिखाता रहा है—पर प्यार के मामले में, उसने आज हरी रोशनी को भी ‘लाल रोशनी’ में बदल दिया है ।

और” ‘सिगनल’ न मिलने से रुकी गाड़ी का ड्राइवर जैसे बेचैनी से सिगरेट के कश-पर-कश खींचे जाता है । नगीनभाई सेठ भी, पान के साथ मुँह में घुल रही ताकत की गोलियों को चाँदी के पीकदान में थूक, ‘मारकोविच’ के लम्बे-लम्बे कश खींचते रहे” ‘इण्डियन आयरन’ के शेयरों में नरमाई आने लगी है, पूंजी वहाँ से खींचकर, ‘टाटा लोको मोटिव’ में लगानी है और रुई की गाँठों का सौदा, शादी के कारण, एक दिन के लिए रुक गया है” बढ़ोतरी और खपत का यही ‘सीजन’ जोर पकड़ रहा है” सट्टे की ‘बिजनिस’ में ऐसे मौके ही कुबेरी—कंगाली के निर्णायक होते हैं ।”

पलँग पर से उठकर, उन्होंने भट से कमरे का एक गोल चक्कर काटा, और फिर थमकर, सिरहाने रखा टेलीफोन उठाया—“१,२, ४,६” हलो, रमणभाई सेठ छे ?”

उत्तर देरी से मिला । बड़ी जोर की भूख में, जैसे भिखारी सेठों को गालियाँ ठोकता है, ऐसी ही कड़ुई-अनुभूति का स्वर घोलती, रमणभाई सेठ की सेठानी बोलीं—“हुई गया छे ।”^१

काल-चक्र के सफेदपोश सिपाही के सातों घोड़े, काली-कलूटी भट्टियारिन की अँधेरी-सराय से निकलकर, अपने मुकाम की ओर चल पड़े थे ।...

नर्मदाबेन की आँखें उघड़ी ही थीं, और वह सामने दीवार पर टँगे हैब्र, सिरूर, रामकुमार और मुलगाँवकर के चित्रों को देख रही थी । बार-बार उठने का उपक्रम करती—पर, फिर अलसाकर, करवट बदल लेती थी । आज वह कोई नई बात, किसी नए विषय पर और कुछ किसी नए-नए के बारे में सोचना चाहती थी । आज, लम्बे अर्से के बाद, उसे अपना मन बिन फूल-पत्तों की डाल-सा रीता लग रहा था, जिसकी गाँठ-गाँठ से नई कोपलें फूटने को हों ।...

पर, याद की घोड़ी मन की अथाम-बेलगाम सवारी से थककर, चूर-चूर हो गई थी और अतीत के वीरान पड़ावों की इर्द-गिर्द बड़ी-बड़ी हो आई स्मृतियों की हरी-हरी दूब चरते रहने, चरते चले जाने का लोभ-सँवरण कर ही नहीं पा रही थी ।...

करवट बदल कर, नर्मदाबेन फिर उन दिनों की स्मृतियों के सैलाब में डूब-सी गई, जब उसके विवाहित-जीवन का पहला-पहला दौर शुरू हो गया था ।...

बेइन्तहा अरमानों और अरोक-उमँगों का पहला ही दौर शुरू हुआ था, कि नर्मदा को लगा कि वैभव—जिन्दगी का पहला दौर तो यह था ही नहीं, प्यार-प्रणय की जिन्दगी का पहला दौर भी नहीं है ।

नर्मदा के पिता मनसुखराय जवेरी खुद कई मिलों के मालिक थे और उनकी माली हालत नगीनभाई से कहीं बहुत ज्यादा अच्छी थी । सो, नर्मदा को ससुराल आने पर वैभव की चकाचौंध से बहलने का अवसर तो न मिला, पर उसका आंशिक-उपभोग अपने ढँग से, अपनी

रुचि के अनुसार और अपनी मर्जी से करने के लिए वह अब स्वतन्त्र थी।

मायके में, वह वैभव-विलास का उपभोग करने वालों में एक थी और उसने परम ऐश्वर्य भोगा था। अपना फ्लैट, अपनी कार, अपना ड्राइवर और अपने टेलीफोन के 'राँग-नम्बरों' की तरह घुमाए जाने वाले नौकर-चाकर—सब-कुछ था। पर, बावजूद इस सबके, वह वैभव-ऐश्वर्य की एक भोक्ता इकाई मात्र थी, स्वामिनी नहीं।...

नगीनभाई के यहाँ आकर, पहली बार उसने स्वामित्व का सुख भोगा। फिर भी, विवाहित-जीवन के शुरू-शुरू वाले दौर में, उसे कुछ ऐसा महसूस होता रहा—और कुछ चीजों का पहला-दौर भले ही शुरू हुआ हो, पर प्यार-अभिसार की ज़िदगी का तो आखिरी दौर भी गुज़र चुका है। सुसराल की पहली सीढ़ी पर पैर रखते ही, जैसे कोई आखिरी मज़िल पीछे छूट गई है। सुहाग की पहली रात, पहली-सेज सोते हुए, सौन्दर्य और सौष्ठव के शतदल पर मँडराने वाला भँवरा बहुत बेसुरा, बहुत बेजान-सा लगा नर्मदा को। जिस मंदिर-मादक गुन-गुन को सुनने की वह आदी थी, वह जैसे उससे दूर, बहुत दूर, खामोश हवा, उदास माहोल को बेचैन करके लौट जाती थी।

सेठ नगीनभाई औरत को समझा भले न सकें, पर समझते ज़रूर थे। नर्मदा के जीवन की रिक्तता को भरने की सामर्थ्य ही नहीं, लगन भी उनमें कम ही थी। उनके पास इतना अवकाश नहीं था, कि वो अपने 'बिजी' जीवन का एक बड़ा हिस्सा, सिर्फ एक औरत का प्यार पाने के लिए, किसी की मनुहार-मनौवल में गँवा दें। नर्मदा उन्हें प्यार कर ही नहीं सकती, रस्म-रिवाज भले ही निभाती रहे—इस तथ्य से सेठ नगीनभाई परिचित हो चुके थे।... सो, नर्मदा का थोड़ा-सा प्यार पाने के लिए, घंटों चापलूसी और चेष्टाएँ करने की जगह, वो पवनपुल पर हसीना बाई के कोठे पर जाना ज़्यादा पसन्द करते थे, जो उनके जूतों की आवाज़ सुनते ही अपने हुस्न को सान पर चढ़ा लेती थी। और सेठ जी को इस चीज़ से कोई वास्ता नहीं था, कि हथियार पुराना

है, या नया—उन्हें धार से ताल्लुक था और वह हमेशा इतनी तेज मिलती थी, कि सेठ जी की बलात् बटोरी हुई वासना के क्रतरे-क्रतरे अलग होकर, थरथराकर खामोश हो जाते थे। और जब सेठ जी हसीना के कोठे से निकलते, तो उन्हें ऐसा लगता, कि उनकी काम-वासना के फोड़ों का सारा पीब-मवाद नितर चुका—और आइन्दा यहाँ आने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाएगी। पर उनकी यह धारणा एक ऐसा वहम-भर थी, कि जैसे कोई खुजली का मरीज खून निकलने तक खुजला लेने के बाद, कुछ ऐसा महसूस करे, कि उसकी खाज हमेशा-हमेशा के लिए चली गई है।...

पर सिर्फ जोर और तेज नाखूनों से खुजला लेने-भर से तो खाज का रोग मिट नहीं जाता ? बल्कि नाखूनों के विष से मिलकर, खुजली अपना दायरा और ज्यादा बढ़ा लेती है।... जब तक रक्त दूषित हो, खुजली के कीटाणु शेष हों—सिर्फ खुजलाते रहना एक व्यसन, एक आदत हो सकता है, खुजली के रोग का निदान नहीं।...

बस, यही हालत नगीनभाई सेठ की थी। कामुकता के कीड़े उनकी रगों में पनपते चले गए थे, पर उनके लिए अपेक्षित खुराक उनके पास नहीं थी। विज्ञापन की औषधियों से नामर्दी का इलाज घर बैठे-बैठे करने वालों की तरह, नगीनभाई एक खोखली रँगिनी और आशनाई से अपनी कमजोर आत्मा के, अपने स्थूल किंतु अशक्त शरीर के अंदर पैठे कामुकता के कीड़ों को बहलाने की कोशिश किए जा रहे थे।

यों, धीरे-धीरे, यह नौबत आई, कि सिर्फ कुलबुलाहट और बेचैनी ही महसूस हो, कीड़े दिखाई न दें।...

ऐसी ही स्थिति में, कभी-कभी, नगीनभाई को खयाल आता—शायद, नर्मदा का प्यार उनकी इन बेचैनियों को अपनी निर्मल धार में बहाकर, कहीं दूर, बहुत दूर पहुँचा देता ? और ऐसा सोचने की रात वो अपनी 'बिजनिस' को भी ताक पर रखकर, जल्दी ही नर्मदा के पास चले जाते।...

लेकिन, नर्मदा तो अब अपना प्रवाह समेटे जा रही थी। कभी-कभी ऐसा हुआ, कि धर्म और कर्तव्य के नाम पर नर्मदा ने उन्हें अपना समग्र प्यार-प्रवाह सौंप दिया, पर नगीनभाई की कमजोर बाँहें उस निर्मल, किंतु उद्दाम प्रवाह को थाम नहीं पाईं, भेल नहीं पाईं।

यों, प्यार के मामले में, तक्रदीर के 'सिगनल-मैन' ने लाल बत्तो बुझाकर, हरी बत्ती दिखाई भी, तो कमजोर आत्मा, अशक्त शरीर का इंजन ऐन मौके पर धोखा दे गया और नगीनभाई ने सोच लिया, कि जो इंजन मालगाड़ी के खाली डिब्बों को खींचने में भी असमर्थ हो, उसे फण्टीयरमेल में जोतने से कोई फायदा नहीं।...

...और उन्होंने अपनी व्यर्थ वहम-व्यसन की काम-वासना की खुजली के लिए फिर से हसीना बाई जैसी नाकाम-इश्क की पेशेवर डाक्टरों की बनावटी शोखी और अदाओं का 'जिंदा-तिलिस्मात' मल-हम इस्तेमाल करना शुरू किया।...

धीरे-धीरे, नर्मदाबेन मर्यादा और परिस्थिति की बंदिशों में बँधी-बँधी अपने रूप-यौवन के उद्दाम-उत्ताल ज्वार को समेटे रहने की आदी हो गई। उसने, नगीनभाई-जैसे सेठों के घरों में हीरे-मोती और सोने की हथकड़ियों से बँधी रहने वाली और कई अतृप्ता सेठानियों की तरह, अपने रूप-यौवन की हर माँग को बहलाने-ठुकराने का नया साधन अपनाया।...

पर, विधि को कुछ और ही शरंज खेलनी थी? उस बुड्ढी को माया की दमा, और कौतुकों की खाँसी की बीमारी बहलाने के लिए शतरंज का खेल चलाए रखना था और उसे एक ऐसे मोहरे की जरूरत थी, जो मात बाजी को भी, अपनी जगह पर अड़ा रहकर, नई बाजी का रूप देता रहे।...

नर्मदा शतरंज का वह मोहरा बनी।...

एक ही साल, समुर गया-के-गया रह गए, ननद के हाथ पीले हो गए और देवर रमणभाई मलाबार हिल की कोठी पर अपनी 'टाइ-

पिस्ट' सीमा को लेकर चला गया, जेठ ने पूना में 'कनफेक्शनरी' का बड़ा कारखाना खोल लिया।... यों, सात मंजिलों के देसाई-भुवन में नर्मदा अकेली रह गई।

चूँकि देवर अपनी गोवन टाईपिस्ट के होठों की लिपिस्टिक से सफेद लिफाफे पर लगाए गए नोटिस और रजिस्टरी के टिकटों-सा, चिपक गया और जेठ पूना रम गए, सो नर्मदा अकेली ही नहीं रह गई, बल्कि (दोनों मिलों और इतर व्यापार का कार-भार नगीनभाई पर पड़ जाने से) एक-छत्र और निरंकुश गृह-स्वामिनी भी बन गई।

असल में, नर्मदा की प्यार-भरी जिदगी का दूसरा दौर यहीं से शुरू हुआ।...

देसाई-भुवन के अंदर ही, नर्मदा बेन ने अपने लिए एक छोटा किंतु भव्य पूजा-गृह बनवाया था। यों, वहाँ कई देवताओं की स्वर्ण-रजत मूर्तियाँ थीं, पर सबसे सुघर-सुन्दर और बड़ी मूर्ति वंशीधर कृष्ण की थी।...

पूजा-गृह नर्मदा को गोकुल-वृन्दावन-सा ही लगे, इसलिए नगीन-भाई सेठ ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी, कि फिलमों में बाँसुरी बजाने वाले बाँके को, पूजा के समय, घर पर बाँसुरी बजाने को, रख लिया था और सिर्फ इसके लिए, उन्होंने उसे बम्बई-जैसे शहर में, अपनी बाँदरा वाली कोठी का फ्लैट दे रखा था और एक हजार मासिक वेतन।...

नगीनभाई सेठ का इशारा पाकर, वह नर्मदा बेन के पूजा-गृह में ही नहीं, जीवन में भी ऐसी बाँसुरी बजा गया, कि नर्मदा का नारीत्व सफल हो गया—वह अब 'माँ' बनने वाली थी।...

शुरू-शुरू में वह इस स्वप्न की-सी स्थिति में हुए पाप से डरती रही पर बाद में उसका शरीर और मन प्रफुल्ल हो उठा, जब नगीनभाई सेठ ने बताया खुद ही, कि संतान पाने की प्रबल लालसा के कारण, उन्होंने ही यह सारा 'नाटक' रचा था।...

नर्मदा को पाँचवाँ महीना लगा ।

बाँके नर्मदा के रूप-यौवन के नशे में ऐसा खोया, कि बाँसुरी के-
रंध्रों पर सही-सही अँगुलियाँ रखना भी भूल गया ।... नर्मदा भी तृप्ति
के सैलाव में अपनी प्यास को और गहरे, और गहरे डुबाने लगी ।...

तब, नगीनभाई ने निश्चय किया—कुल की मर्यादा और लीक
रखने की व्यवस्था हो गई है । नर्मदा को बहलाने का साधन भी जुट
गया और वंश चलाने वाला भी मिल गया । कौन कह सकता है, बेटा,
नर्मदा बेन से, नगीनभाई का नहीं होगा ?...

सो, अब न 'बाँसुरी' की जरूरत रह गई है और न 'बाँसुरी वाले'
की ! बल्कि, बाँसुरी वाले का बने रहना घातक भी था । वह 'ब्लेक-
मेलिंग' कर सकता था । बदनामी फैला सकता था—यही नहीं, वह
नर्मदा को भी अपनी बाँसुरी बना सकता था !...

और दूसरे ही दिन के 'मुंबई समाचार' में नर्मदा बेन ने यह समा-
चार पढ़ा—

“जागीता सिने-बाँसुरी-वादक बाँके बिहारी नो
आकस्मिक अवसान !...”

बे शुमार दारू पीवाथी एना मगजना
नसो फाटी गया !”

...और नर्मदा बेन की आँखों में उस दिन भी आँसू आ गए थे ।...

×

×

×

सफेदपोश-सिपाही के सातों घोड़े अपनी मंजिल की ओर दौड़ते,
एक फेनिल और गर्म साँस, खिड़की के रास्ते, नर्मदाबेन के कमरे में
छोड़ गए, तो नर्मदाबेन की याद की घोड़ी चिहूँक कर, खड़ी हो गई ।...

जब तक वह शान्त हो, फिर स्मृतियों की दूब चरे—नर्मदा ने भट

१. सुप्रसिद्ध सिने-बाँसुरी-वादक बाँके बिहारी की आकस्मिक-मृत्यु । बहुत
ज्यादा दारू पीने से, दिमाग की नसें फट गई ।

से 'रिसीवर' उठाया—३,२,५,०,६... 'हलो, 'कविता-संगम !'...'

जिस काफे-शमशेर ईरानी होटल के बाहर, एक कोने में 'बनवारी' जी ने अपनी छोटी-सी पान की दुकान लगा रखी थी, उसी के मालिक नौशेरवाँ से कह-सुनकर, उसका टेलीफोन नंबर 'कविता-संगम' के लिए भी प्रयोग कर लेने की व्यवस्था उन्होंने कर रखी थी और उनके 'विजिटिंग-कार्ड' पर एक कोने में छपा हुआ था—फोन नं० ३,२,५,०,६...

"अरे, पानवाला शाहीर..." नौशेरवाँ सेठ के एक वेटर ने आवाज दी—"तुमेरा फोन आया है। कोई बाई माएस उधर से बोलता है।" चूँकि, बनवारी जी अक्सर नौशेरवाँ सेठ और उनके कारिन्दों को सम्मेलन, मुशायरों में फ्री-पास देकर बुलाते रहते थे और वहाँ ब्रज और अवधि-मिश्रित अपनी विशेष खड़ी बोली में, यदा-कदा कोई राष्ट्रीय कविता भी पढ़ दिया करते थे, सो 'पान वाला शाहीर' के रूप में उनकी शान जमी हुई थी।...

"हलो...कौन...?" पूना मसाला, कत्था कम, चूना ज्यादा मध्यम पान का आर्डर कैन्सल करके, 'बनवारी' जी ने लपक कर फोन लिया—"अरे...आप सेठानी जी ? नमस्ते जी...कोई सेवा...?"

"जरा तमारा नवा शायर...शुँ नाम, एनो..."

"'हृदय' जी, या 'पराग' जी ?..."

"ना-ना...जेणो 'प्यार न छीनो' शायरी कीधी हती...शुँ एनो नाम...?"

"अरे...याद आया...ठीक 'कृष्ण' जी ?"

"हाँ हाँ, एज ! कीसण जी ! जरा एनो एड्रेस आपो, महेरबानो करीने।..."

पर, 'कृष्ण' जी का पता तो बनवारी जी को भी मालूम नहीं था। सहसा उन्हें एक बात सूझी और मुस्कुराकर बोले—"सेठानी जी कभी कुछ शायरी-गोष्ठी-बोष्ठी का घर पर आयोजन कीजिए ना ? 'कृष्ण' जी की शायरी भी हो जाएगी।..."

“आवता रविवारे ।...शनिवारे मने मलो !” कहते हुए, नर्मदा बेन ने फोन रख दिया ।

‘बनवारी’ जी नर्मदा बेन की इस बात को, एक खुशखबरी की तरह, बड़ी देर तक सुनते रहे । ‘काउंटर’ के पास से हटकर, जैसे ही वो अपनी दुकान की ओर बढ़े—‘काउंटर’ पर बैठा, नौशेरवाँ सेठ का दामाद बोला—“ये बनारस का शाहीर लोक भी कईसा हलकट् होता ! टेलीफून का ऊपर कत्थे का दाग लगा गया ।...”

‘बनवारी’ जी ने पान में, जर्दा की जगह, सौंप भरके दे दिया ।

×

×

×

नौकरानी, न-जाने कितनी बार, आ-आके चली गई थी । शादो के इन अट्ठारह-उन्नीस वर्षों में भी, नर्मदाबेन की कई आदतें नहीं बदली हैं । जैसे, ‘कोल्ड कॉफी’ बिस्तर पर लेटे-लेटे ही पिएगी, बाद में, हाथ-मुँह धोके गरम चाय...पूरे तीन कप ।...नहाने का उसका कोई समय नहीं । जब बिस्तर से उठ गई, उसके घंटे-भर बाद । फिर चाहे रात के चार बजे हों, या सुबह के दश । वह आवाज दे, किसी-न-किसी को हाजिर रहना चाहिए । इसीलिए, कितने ही नौकर-नौकरानियाँ हैं । पर, एक-दो उसके अन्तरंग नौकर होते हैं । जिनके सामने वह स्वामिनी-सेठानी ही नहीं, एक अलमस्त औरत भी रहती है । हर चीज़ की ओर से लापरवाह । हर चीज़ पर एक उड़ती नज़र-सी डाल, कभी-कभी, किसी भी चीज़ को एक गहरी दिलचस्पी के साथ देखना ...वह चाहे टेलीफोन का चोंगा हो, कोल्ड-कॉफी या चाय का प्याला हो और या कमरे का हरी रोशनी वाला बल्ब हो—इधर कुछ ऐसी बान नर्मदाबेन की पड़ गई थी ।...

पूजा-गृह की संस्थापना के दिनों की बात और थी । तब नर्मदा खुद सबेरे उठती थी, नौकरों को सोने देती थी । नहाती थी, बिना चाय-कॉफी पिए ही । फिर माला गूँथती, पूजा में लग जाती थी । ‘विष्णु-सहस्रनाम’—‘गीता’—‘श्रीमद्भागवत्’—‘रामायण’ और

‘महाभारत’—जैसी धार्मिक पुस्तकों के साथ-साथ, ‘हनुमान चालीसा’ और ‘दुर्गासप्तशती’ वहाँ रहती थी ।...

पर, जब से बाँके आने लगा—चाय-काँफी ही नहीं, बाँके की ‘रम’ और सिगरेटें भी पूजागृह में पहुँचने लगीं । और पूजा का सरूर, बाँके की सिगरेटों के धूम्र-वलियों-सा विलीन होता गया । बाँके ने नर्मदाबेन की अतृप्ति के रन्ध्रों पर सही-सही अँगुलियाँ फेरों ।...

इस बात को १७ वर्ष बीत चुके ।...

बाँके की धरोहर को अपनी कुक्षि में सहेजे-सहेजे, जब आठ-नौ महीने होने को आए—नर्मदा को ऐसा लगा, जैसे कोई उसके अन्दर-ही-अन्दर खोखली बाँसुरी में घृणा और प्रतिशोध के, मौत और मातम के स्वर फूँक रहा है । जैसे कोई ‘मुंबई समाचार’ के ‘मुंबई शहेरनी हल चलो’ स्तम्भ के बीचोंबीच छपी कोई खबर, ऊँची-तेज आवाज़ वाले हाँकर की तरह चिल्ला-चिल्ला कर पढ़ रहा है—“जाणीता बाँसुरी-वादक बाँके बिहारी नो आकस्मिक-अवसान !”...

और नर्मदा की आँखों के आगे एक अंधकार का गोला-सा आके फूटता और वह टेलीफोन पर नगीनभाई सेठ को देखती ।...वो उस होटल के मैनेजर को फोन कर रहे हैं, जहाँ बाँके शराब पीने जाता था—“हलो · कोण...हा हा...तमारा तरफ मफत में पिलाता जाओ · · पिलाता जाओ!...”

· · इधर नगीन भाई सेठ के गालों पर सुखी आने लगी थी । वह दोस्तों में कहते फिरते थे, कि वो शीघ्र ही एक बच्चे के बाप बनने वाले हैं । उनके गर्व और उनकी खुशी से असली बापों के चेहरे भी फीके पड़ जाते थे ।...

पर, जब बच्चा हुआ, तो जैसे वज्रपात हो गया, नर्मदा की कोख से जैसे दूसरा बाँके बिहारी बाहर आया था । जैसे बहुत शराब पीने के कारण, आकस्मिक मौत के बाद, बाँके की आत्मा नर्मदा की कुक्षि में प्रवेश पा गई हो । उस छोटे-से बच्चे के होंठ अक्सर हिलते-कुल-

बुलाते ही रहते, ठीक बाँके बिहारी के होठों की तरह, जब वह बाँसुरी बजाता था, या नर्मदा के बहुत करीब आ जाता था ।...उसके नाक-नकश ऐसे थे, कि जिसने एक बार भी बाँके बिहारी को देखा हो, वही नर्मदा-नगीन भाई को शक की नज़र से देखने लगे ।...

नर्मदा उसे बहुत प्यार करने लगी थी । बहुत प्यार । उसे अब रात को जागृतावस्था या सपने में बाँसुरी के कभा बहुत तेज़, कभी बहुत धीमे स्वर सुनाई देते, पर सबमें एक मिठास होती थी । तब नर्मदा मुलगाँवकर के उस चित्र को बड़ी-बड़ी आँखों से, बड़ी देर तक, हेरती रहती, जिसमें कान्हा के होठों पर पीले, रेशमी फुन्ने वाली बाँसुरी पड़ी रहती ।...नर्मदा सोचती, बच्चे का नाम वह खुद 'सजैस्ट' करेगी ।...नाम-धरन की तैयारियाँ, बड़ी धूम-धाम से हो रही थीं ।...

पर, एक बाजी और मात हो गई ।

आठवीं रात बच्चे की भी आकस्मिक मृत्यु हो गई ।

सेठ नगीनभाई बच्चे को गोद में उठाए, उसे प्यार करते, चूमते-चुमकारते, लोरी सुनाते बारामदे में घूम फिर रहे थे, कि बदकिस्मती का वज्र उन पर गिर पड़ा !...सात मंजिलों की ऊँचाई से डामर-पिटी सड़क पर गिरकर, वह मासूम बच्चा मांस-खून की एक दर्दनाक-लोथ बन गया ।...सेठ नगीनभाई उस दिन छाती कूट-कूट कर, विलाप करने लगे और अपने बच्चे की स्मृति में, उन्होंने दस हजार रुपए शहर के अनाथाश्रमों को दान दिए ।...

नर्मदा को सहसा बेहोशी का दौर पड़ गया । होश में आने पर, उसने कमरे के चारों ओर आँखें उठाई, तो मुलगाँवकर का 'बाँसुरी-वाला' चित्र नहीं दिखाई दिया । उसे वहाँ से हटवा दिया गया था ।...

और नर्मदाबेन ने सिरहाने रखी नगीनभाई की तसवीर को जोर से जमीन पर पटक दिया । फर्श पर तमाम काँच के टुकड़े बिखर गए ।...नगीन भाई एक प्रश्न-चिन्ह की तरह कमरे में आए-- "केम, शू थई गयो ?"

“फई नहिं ।....” नर्मदाबेन ने मुँह फेर लिया—“तसवीर हाथ थी छूटी गई छे !”

×

×

×

इस घटना को १७ वर्ष हो चुके हैं ।

तब से नर्मदा की जिन्दगी में फिर नया दौर आया । नगीन भाई से उसे अपार घृणा हो गई थी, पर वह करती क्या ? नगीनभाई के लिए, उसके हृदय में प्यार न था और जिससे प्यार न हो, उसकी विकृतियों को अपने गले का हार कोई कैसे बनाए ?...

अब नर्मदा देर से सोने-उठने लगी । बच्चे की मृत्यु के बाद, उसका दिल जैसे और मजबूत हो गया । उसका रूप-यौवन और गदरा गया । सेठानी नर्मदाबेन से, वह तेईस वर्ष की एक अलमस्त-अल्हड़ अभिसारिका बन गई । उसकी वासना बढ़ती गई । हविशें बढ़ती गई । और वह देसाई-भुवन की परिधि से बाहर निकलने लगी । उसने कार को खुद ड्राइव करना सीखा । सेठ-घरानों की गृहिणी की जगह, फिर कालेज-जीवन की-सी स्फूर्ति उसमें आ गई । वह चुस्त और भीने ब्लाउज-चोलियाँ और साड़ियाँ पहनने लगी और उसे ऐसा महसूस होने लगा, जैसे वह कुंवारी न सही, अनब्याही रह गई है ।...सुन्दर-स्वास्थ्य पुरुषों के संसर्ग-संपर्क में आने की अदम्य-लालसा उसे बलबों, महिलाश्रमों और जुहू-चौपाटी की बेंचों पर ले जाने लगी ।

सेठ नगीन भाई ने यह रँग देखा और अपना रँग बदला । यदि, नर्मदा की वासना वेग पाती गई, तो उनके खानदान की नाक कटाकर छोड़ेगी और अपने समाज में सिर उठा कर चलना मुश्किल हो जाएगा ।...

तब उन्होंने ‘दूधवाला...!...दूधवाला !...’ की आवाज देने वाले, रामदुलारे को घर पर रखा, ताकि विद्रोह किले की दीवारों के अन्दर ही दबाया जा सके । रामदुलारे अखाड़ेबाज, चुस्त और मजबूत काँठी का था । पर, अपनी पत्नी रामी का निर्व्याज तन-मन-समर्पण सहज

ही, सीधे-साधे ढँग से पा लेने का अभ्यासी रामदुलारे, नर्मदाबेन के कल्पनाशील-प्यार के सामने, वगैर चिमनी की लालटेन-सा, बारामदे की तेज हवा में लटका रहा ।... न उसमें इतना साहस था, कि, नगीन भाई के बार-बार प्रोत्साहित करने पर भी, वह नर्मदा के कमरे में प्रवेश कर सके और सेठ जी का आदेश पूरा कर सके, न नर्मदाबेन की वासना ही इतनी वेगैरत, जितनी नगीनभाई समझे बैठे थे ।...

नर्मदा विपुल वासनावती थी सही, पर मन सौंपने पर ही तन सौंपने का उसका अपना संकल्प, उसका नियम था । उसका प्यार खेल के मैदान से बाहर चली आई 'फटवाल' नहीं था, कि जिसके करीब पहुँचे वही 'किक्' करे । वह किसी शानदार 'लॉन' में खेली जानेवाली 'टेनिस' थी ।...

रामदुलारे की अकारण-आकस्मिक नियुक्ति के कारण का सहसा एक आभास-सा नर्मदा को मिला, क्योंकि गई रात ही नगीन भाई ने कहा था—“घर के अन्दर ही तुम जो चाहो करो, घर से बाहर मर्यादा की रेखा न लाँघ बैठना । तुम्हें हर चीज यहीं उपलब्ध हो जाएगी ।”

उसने चिल्लाकर, पलंग पर पड़े-पड़े ही कहा—“केम, भैया, जी ? शूँ छे ?”

रामदुलारे इतने से ही लौट चला, तो नगीन भाई ने डपट दिया—“नौकरी नहीं करने का क्या ?”

घर की गरीबी और गर्भिणी रामी की फटेहाली का चित्र रामदुलारे की आँखों में घूम गया । सेठ जी अपने कमरे के दरवाजे से निकल कर, सीढ़ी पर खड़े हो गए, जहाँ से रामदुलारे नीचे उतरने लगा था । उन्हें एक ओर कर, रामदुलारे बोला—“नौकरी तो करने का है, सेठ ! बर्तन घिसने का, चूल्हा-चक्की का काम दे दो । किसी मिल के फाटक पर दरबान बना दो, चौबीस घंटे पहरा भरेगा ।...पर, सेठानी हमको 'भाई' बोलती हैं । उनके ऊपर बुरी नजर कैसे डालेगा ?...”

और सेठ जी ने हाथ का रुमाल सीढ़ी पर छटका दिया—कई जेवरों

के साथ, हजार-दो हजार नकदी बिखर गई—“पकड़ो ! पकड़ो !! पकड़ो !!! चोर ! चोर !!”...

और रामदुलारे, कुछ ही दिनों बाद, तीन-चार साल की सजा लेकर, नासिक सेण्ट्रल जेल चला गया ।

...यों एक बाजी और मात हो गई । पर, शतरंज का खास मोहरा अपनी जगह पड़ा रहा ।...

×

×

×

“भैया रामदुलारे का याद अपने को अभी तक आता है ।”

किस्सा कहते-कहते वस्ताद जरा रुके । साफी को एक बार खोलकर, दुबारा चिलम की चारों ओर लपेटा—“या शम्भू, खाने को रोटी-दाल, रहने को तम्बू, ...कमर में लँगोटी हाथ में बम्बू (डंडा) ।... हर खुदाई में खुदा, हर खुदा में तू !...बंदे, हर गिला को कर कलेजे से रफू...। चक्कर ! बंदे और खुदा की टक्कर...गुरू गुड़, और चेला शक्कर !...लगे दम, मिटे गम ! बगैर पैसे की दुनिया, यार, फोकट का भरम !! सुनने में नहीं लाज, कहने में नहीं शरम...पर, कह हमेशा सच्ची बात, यही तेरा धरम !!! यार, पैसे की जोरू, पैसे का खसम ! पैसा नहीं पास, तो बिन मरे का मातम !!...कौन किसका सैया, कौन किसका सनम !...लपेट साफी, उठा चरस की लौ...दो में सात गए, बाकी बचे नौ !...”

और एक जोर की दम लेकर, वस्ताद ने पोपट का नम्बर दे दिया । चिलम को अपने हाथ में लेते हुए, वस्ताद के हाथ में नया सवाल थमा दिया पोपट ने—“दो में से सात जाएगा कैसे ? नौ बाकी रहेगा कैसे ? चरस चढ़ तो नहीं गई, वस्ताद ?...”

“जिदगी तेरी दर्जा व की बालपोथी नहीं है, बेटे !” वस्ताद को हँसी आ गई—“जिदगी की रवानियों और कहानियों का हिसाब दूसरे ही माप-बट्टों से होता है । एक छोटी-सी हरकत सौ साल की जिदगी को नाकों-चने चबवा देती है । आधी उमर की संती-फक्रीरी,

जरा-सी गलती को नहीं सुधार पाती। एक मोहब्बत, एक नफ़रत—
दो अदना लफ़्ज़ ! मगर, जिंदगी की हजार-हजार सफे की चौपड़ियाँ
(पुस्तकें) इन्हीं दो से निकलती हैं, बेटे ! तू दो में से सिर्फ सात की
बात कहता है।...

पोपट फिर भी प्रश्नवती-आँखें उघाड़े रहा, चिलम पीता रहा।

वस्ताद बोले—“परसों शाम को दो रुपए का सिंगल आँकड़ा
लगाया था। मिल गया। सौलह रुपये आए। कल सात रुपए का
डबलिंग-आँकड़ा लगाया। तिग्गी से छक्की !...पर, ‘३६’ का आँकड़ा
भी कभी सीधा बैठता है ? सात रुपए डूब गए। दो से सोला बने,
उसमें से सात चले गए—बाकी कै रहे, बेटे ?...“नर्मदाबेन की जिंदगी
में भी मोहब्बत और आशनाई के सिंगल-डबल आँकड़े कुछ इस तरह
लगते रहे, कि कभी दो से सोला बनें, कभी सात डूब जाएँ, नौ रह
जाएँ।...खैर, गाँठ की नहीं गई, गनीमत थी।...“मेरे बेटे, औरत को
खुदा ने मोहब्बत करने के लिए—सिर्फ मोहब्बत करने के लिए, खुद
अपने हाथों बनाया... वह इन्सान को प्यार करती चली गई...कोई
उसका आशिक बना, तो उसने मोहब्बत दी...कोई उसका अब्बा बना,
तो उसने इज्जत दी...कोई उसका भाई बना, तो उसने प्यार दिया...
और कोई उसका बेटा बना, तो उसने चूमकर, अपनी बेदाश-छाती से
लगा लिया।...“मगर, जमाने की रफ़्तार के साथ, इन्सान की इन्सा-
नियत भी पेंतरे बदलने लगी, तो उसने औरत से मोहब्बत को पाने का
सब्र छोड़ दिया, और ताक़त के गरूर में, मोहब्बत को छनीने-लूटने लगा।
मोहब्बत जब लूटी गई, तो वह नफ़रत बन गई। नफ़रत की आग से
बचने के लिए, इन्सान ने मोहब्बत की भी दायरे बन्दी शुरू कर दी और
यों बाँसुरी की तान को छीनने के लिए, बाँसुरी के बजाने वाले पर
पहरे बिठाए रहा। पर तरन्नुम भी कहीं कैद में रह सका है, बेटे ?...
“इधर बेकसूर रामदुलारे नासिक सेण्ट्रल जेल में चला गया। रामी
फुटपाथ पर तड़फ-तड़फ कर मर गई।... उधर नर्मदाबेन सेठानी के

दिलो-जिसम नगीनभाई की बंदिशों के नासिक सेण्टल-जेल से आजाद होकर, एक नई मंजिल पाने की कोशिश में लगे ।...

और उसके पास दौलत की ताकत थी । उसने अब दौलत को अपने लिए इस्तेमाल करना सीखा और इस्तेमाल करने का ऐसा तरीका सीखा, कि नगीनाभाई को भी कोई एतराज नहीं रहा ।... उसने मन्दिर बनवाया, पुजारी अपनी पसन्द का रखा । उसने 'अनाथालय' खोला, मैनेजर अपनी चाहत का रखा । उसने गर्ल्स-स्कूल खुलवाया, तो उसका प्रिंसिपल अपनी मोहब्बत के स्कूल में भर्ती कर लिया !... वस्ताद कहता रहा—

यों, वह एक 'सुसैटी-वूमन' बन गई ।... "सुसैटी-वूमन"... जो ऐसी खूबी से आशनाई और अय्याशी के खेल खेल सके, कि खेल 'गुल्ली-डंडे' का हो और मैदान 'क्रिकेट' का दिखाई पड़े ! 'डिरामा' 'लैला-मजनू' और 'शीरी-फ़रहाद' का खेला जाए, पर 'सीन' रामायन-महा-भारत, वेद-कुरान के दिखाई पड़ें ! पर्दे के अन्दर जिस्म और जवानियों की कालाबाजारी के सौदे हों, पर पर्दे पर तस्वीरें साधू-भगतों और बरमा-बिस्नू की बनी हुई हों !... "बेटे, एक बात ज़रूर है ।... और चाहे जो हो, नर्मदाबेन सेठानी है बड़ी नरम दिल । वह मोहब्बत और मोहब्बत करने वालों की कद्र करती है ।..."

"करती है...? याने, नर्मदाबेन सेठानी अभी जिन्दा है ?"

"हाँ, बेटे ! अभी वह सिर्फ चालीस वर्ष की है । और उसने एक नया मन्दिर बनवाया है । खैर यह बात तो किस्से की आखिरी किस्त होगी । बिर बताऊँगा । बल्कि, मौका लगेगा, तो कल अपन दोनों नर्मदाबेन के आश्रम में ही चले जाएँगे । कबसे मिलने की सोच रहा हूँ ।..." वस्ताद ने चिलम के लिए हाथ बढ़ाया ।

चारों ओर साफी को ठीक से लपेटते हुए, पोपट ने चिलम दे दी और पूछा, "सेठानी तुमको जानती है, वस्ताद ?" उसे अपार-विस्मय हो रहा था, वस्ताद की बातों से ।

“नहीं, पर, पहचान लेगी!...खैर, जाने दे अभी यह पूछा-ताछी...
किस्से का नाड़ा कहाँ खिसक गया था...?” वस्ताद ने चिलम की दम
लगाकर, फिर किस्से का सरका हुआ नाड़ा ठीक किया—

“‘सुसैटी वूमन’ बनने के दश-बारा वरस-बाद, नर्मदाबेन ने
फिर एक नया कदम उठाया। मोहब्बत की भूखी वह—अपनी बैचेनी
को करार देने के लिए, उसने ‘करसन’ को अपना दिल देना शुरू
किया...”

४

शनिवार को आकर, ‘बनवारी’ जी ‘कविता-संगम’ के तत्वाधान
में एक कविता-गोष्ठी ‘देसाई-भुवन’ में करने का ठेका ले गए। बढ़िया
जल-पान की व्यवस्था के अतिरिक्त, कवियों और ‘कविता-संगम’ के
लिए एक हजार रुपए देने का नर्मदा बेन ने बचन दिया।...

रविवार की संध्या भी आई। कवि भी आए ‘हृदय’ जी, ‘पराग’
जी, ‘क्षीरद’ जी...और ‘कृष्ण’।...

काव्य-पाठ का दौर चला...

‘कृष्ण’ की रस-भरी कविता में सभी खो गए।

“न माथे चूनर, न चोली वक्ष पर

साँझ इतनी हो चली है, बावरी।...

नर्मदाबेन ने सायास उभारे-सँभाले उरोजों पर एक नज़र डाल-
कर, गले की सीध में खुले रह गए हिस्से पर साड़ी का पल्ला डालकर,

पल्लू ठीक कर लिया।

‘कृष्ण’, उससे बेखबर, गाता रहा—

“स्यात्, तुम ही गाँव मेरा छोड़कर,
जा रही हो दूसरे के गाँव, री!...
मुँद गए शेफालिका के नत-नयन,
भर गई चंपाकली की पाँखुरी...
स्यात्, छेड़ी है तुम्हीं ने आज भी,
दर्द की अंगार—भरती बाँसुरी?”

...नर्मदाबेन को सहसाही, बाँके और बाँसुरी की स्मृति हो आई।
बच्चे की याद हो आई। नगीनभाई सेठ के षड्यन्त्र याद आ गए।...

कवि ‘वाह-वाह’... ‘वाह-वा’ की रस्म-अदाई करते रहे... और
‘कृष्ण’, अपने ही में खोया-खोया, गाता रहा—

“जो न बसते तस्करों के गाँव में,
जो न लेते पत्थरों का आसरा—
स्यात्, होतीं तुम न मुझसे विलग यों...
और, होता मैं न इतना बावरा!...
स्यात्...”

सहसा सिसकने की-सी आवाज सुनकर, सबने देखा नर्मदाबेन
फफक-फफककर, रोने लगी थी।...

परिस्थिति और उस्थिति का ध्यान आते ही, नर्मदाबेन सँभली
और उसने एक लिफाफा ‘बनवारी’ जी की ओर बढ़ा दिया—“बस,
आज की गोष्ठी इतनी ही रखिए... फिर कभी और...” कहते हुए
नर्मदाबेन अपने कमरे में चली गई।

कवि आपस में फुसफुसाने लगे— “लगे यार बहिश्त में मसिया
पढ़ने? और सारा मज्जा किरकिरा कर दिया!”

“बस, ‘बनवारी’ जी ने भी पहले ही कब्रिस्तान के मौलवी को पेश
कर दिया। मुझे ‘चान्स’ दिए होते, तो वह कविता पढ़ता, कि सेठानी

जी का चेहरा फूल-सा खिल उठता ।....”

“आज तो ‘प्रथम ग्रासे मक्षिका पात’ हो गया है !....” बनवारी जी उदास-स्वर में बोले— “अब आगे क्या खाक गोष्ठी करवाएँगी, सेठानी जी ! वाह, भाई कृष्ण जी, वाह ! कविता की ऐसी मुर्दनी-मुरली आपने सुनाई, कि बस !.... अरे, मैं क्या इन्हें लाता.... वो तो सेठानी जी ने ही बुलवा लिया था । उस दिन की कविता जँच गई थी । इसलिए, आज पहले ही इनसे पढ़वाया.... अब पछता रहा हूँ ।....”

“अमाँ कविता लिखना और बात है, उसे मौका देखकर, जमाना और बात है ।” ‘क्षीरद’ जी अपनी औरतनुमा-आवाज़ में बोले ।

कवियों की चखचख चलती रही, कि नौकर ‘नाश्ते का सामान’ लगाने लगे ।....

“संतरे.... सेब.... अंगूर.... अनार.... वा, भाई ! फलों का पर्व मना दिया है, सेठानी जी ने ।....” सेठानी को वापस आते देख, ‘बनवारी’ जी बोले—“केले और हो जाते, मज़ा आ जाता....”

नर्मदा सेठानी ने बूढ़े नौकर गयादीन को नीचे भेज दिया । अच्छे केले ढूँढता, गयादीन भूलेश्वर पहुँच गया ।

केलों का भाव ठहराकर, बोला—“पूरी पाटी ले लेंगी, सेठानी ! जरा ऊपर तक ले चल, वो सामने की मंजिल पर । उधर रामायन-कथा हो रही है, राम का नाम भी सुन लेगी ।....”

केले वाली साथ चली आई । उसके भाग उजागर हो गए थे । उसने गर्वोन्नत सिर उठाकर, सामने खड़े विनायक को देखा और चल पड़ी.... विनायक पहले हँसा । सीटी दी— ‘चली गोरी’.... फिर मुँह की बीड़ी को सड़क पर थूककर, उसे पाँवों से कुचल दिया ।—

नर्मदा सेठानी ने सचमुच सारे केले ले लिए ।

‘बनवारी’ बोले—“इतने केले क्यों लेती हैं ?”

“बेचारी सात मंजिल चढ़कर आई है ।”—नर्मदाबेन ने ‘बनवारी’ जी की बात टाल दी और पैसे दे दिए । एक सरसरी-निगाह कवियों

पर डालकर, केले वाली नीचे उतर गई। सीढ़ियों पर कुछ देर खड़ी रही, कि कुछ रामायन-कथा कानों में पड़ जाए। दरबान बोला—“काहे को उभा^१ है?”

और केले वाली सहमकर, सीधे चली गई।

नाश्ता-चाय के बाद, कविगण विदा होने लगे।

‘बनवारी’ जी आदर दिखाते हुए, विनीत-स्वर में, बोले—“फिर कभी जरूर याद कीजियेगा, सेठानी जी ! टेलीफोन-नम्बर आपके पास है ही। इस बार ऑल-इण्डिया फेम के कुछ कवियों को बुलाने का इरादा है।...”

नर्मदा बेन बोली—“केम नहिं, ...जरूर बुलाऊंगी।”

नीचे उतरते-उतरते, ‘बनवारी’ जी ने और कवियों को तो दश-दश के दो-दो नोट दिए—“गोष्ठी जमती, तो दो सौ से कम नहीं बनते। सारा गुड़ गोबर कर दिया।...” और जेब से रेजगारी निकालकर, एक रुपया देते हुए, ‘कृष्ण’ से बोले—“खैर, जो हुआ, सो हुआ। आगे ‘ओडियन्स’ देखकर कविता पढ़िएगा। लीजिए, यह आने-जाने का किराया। अपनी जेब से देना पड़ा रहा है।...”

‘कृष्ण’ एक आहत्-दृष्टि से सबको देखता हुआ, बिना रुपया लिए ही, आगे बढ़ गया।...

कवियों के पीछे-पीछे ही, दरबान मेहरबानसिंह नेपाली भी नीचे उतरा। जल्दी-जल्दी चलता, गली में मुड़ रहे, ‘कृष्ण’ के करीब पहुँचा—“शायर-सा’ ब ! ...शायर सा’ ब ! ...शायर सा’ ब !...”

चौककर, कृष्ण पीछे मुड़ा।

“आपको सेठानी सा’ब ने बुलाया है। हमारा साथ चलो।...”

एक अज्ञात कुतूहल-वश ही, कृष्ण मेहरबानसिंह के साथ चला आया।...

दरबान को भेजने के बाद, कि 'गेरुवे कुर्ते और सफेद चूड़ीदार' पायजामे वाले को अलग से बुलाकर लाओ। नर्मदा बेन फिर एक ख्याल में खो गई।

पिछले बारह वर्षों से वह भोग-विलास का जीवन बिताती आ रही थी। वासनाएँ तुष्ट हो चुकी थीं। उनका उद्दाम-ज्वार मनचाही मौज उछल-उछलकर, थमने लग गया था। अड़तीस की उम्र, औरत के लिए, कम नहीं होती। वह तो नर्मदा थी, कि यौवन को जैसे थामे बैठी थी।

पौष्टिक भोजन, मानसिक-परितोष और उन्मुक्त-चिंतन चलने से उसके अवयव सौन्दर्य-सौष्ठव से गठे हुए थे, निखरे हुए थे। सो, प्रौढ़ा-वस्था में भी वह किसी तरुणी से कम नहीं लगती थी।

यों, अब अपने व्यतीत-वर्तमान से नर्मदा उकता रही थी। भोग-विलास की अति से, आत्मा ऊब चली थी और नर्मदा फिर ऐसा महसूस करने लगी थी, कि उसके जीवन में फिर रिक्तता और वीरानी आने लगी है। उसे लगा, सब-कुछ पाकर भी, कुछ ऐसा उसने नहीं पाया, जिसके उपभोग से आत्मा को परितोष मिल सके। केवल शरीर की माँगें पूरी हो जाने से क्या? आत्मा तो अतृप्त ही रह गई।

जैसे एकाएक, बाँध का मुँह खुल जाने से नदी का बँधा जल नितर जाता है, और वह पूर्ववत् अपनी धार बहने लगती है—भोग-विलास का बाँध, जो जर्जर तो हो ही चला था, टूटता देख, नर्मदा बेन फिर हल्कापन-रीतापन महसूस करने लगी थी। उसको ऐसा लगता, उस का शरीर भले ही बहुत ज्यादा व्यभिचरित हुआ हो, आत्मा तो अन-

व्याही ही नहीं, कुंवारी ही रह गई है ।.....

और अपनी इस बेतुकी, बेबुनियाद-अनुभूति पर वह खुद ही हँस उठती—“हवे शूँ छै ? यौवन-संध्या नो वखत आवी रह्यो के । उतार नो सफर छे । मंजिल सामे नथी । समय घगूँ छै, परा सफर करवा माटे उल्लास न थी ।.....”^१

उस दिन हिन्दी-भवन वाले कवि सम्मेलन में जाने के बाद, यह मान्यता कुछ बदलती लगी थी, यह उदासीनता कुछ दूर होती लगी थी, नर्मदा को ।.....

मुझसे मेरा प्यार न छीनो । . . .

मेरी इन दुखिया साँसों से जीने का आधार.....

सच ही, प्यार साँसों को जिलाए जाने का एक अटूट आधार है । प्यार के बिना तो, हर चलती हुई साँस भी मुर्दा लगती है—बिल्कुल बन्द कमरे की हवा की तरह घुटती हुई । ऐसी घुटन, ऐसी मुर्दानी नर्मदा को जाने कितनी बार महसूस हुई है ? तो क्या, उससे उसका प्यार छीना गया है ? उसकी साँसों से निर्बन्ध-स्वच्छन्द चलते रहने का आधार छीना गया है ? क्यों उसे ऐसा कई बार अनुभव हुआ है, कि जीवन का प्रवाह अब थमा, अब थमा ? चलते-चरण अब रुके ? अभी अभी बिछी शतरंज की बाजी, न खेले ही, अब मात हुई ?

चितन-अनुभूति के ऐसे क्षणों में, उसकी आँखों के गहरे समुद्र में अतीत-व्यतीत के धुँधले पड़ गए चित्रों का भग्न-जलपोत, नगीनभाई

१. अब क्या है ? यौवन-संध्या का समय समीप आ रहा है । उतार की यात्रा है । मंजिल सामने नहीं है । यों, समय बहुत है—पर यात्रा करने का उत्साह नहीं रहा अब । (गुजराती)

के षड्यन्त्रों के अंधेरे-टीले से टकराकर, सपनों के नारिकेल-वृक्षों के सहारे अर्द्ध-ध्वस्त पड़ा लगता है ।.....

तब नर्मदाबेन सोचती है, जीवन में आने वाली सारी विडम्बनाओं के मूल में क्या उसी की विपुल-वासना नहीं ? क्या उसीकी मर्यादा-हीनता और अनैतिकता ने व्यतीत के स्वप्न पोतों को नगीनभाई के षड्यन्त्रों के अंधेरे-टीले तक नहीं पहुँचाया है ?.....

बावजूद इस यथार्थता के, उसे अपनी अमर्यादित जीवन-नर्मदा के प्रवाह को गलत दिशा में मोड़ने के मूल में भी कोई बात लगती है ।..

नारी और नदी एक-राशि होती हैं ।

कगारों-तटों का बंधन अमान्य नहीं, पर बहने की, स्वाभाविक और स्वच्छंद-धार बहने की, सुविधा उन्हें चाहिए, फिर अपने उन्मुक्त-निर्मल प्यार से वो जीवन-धरती को सींच-सींच कर धन्य कर देंगी । उन पर बाँध बाँधिए, पर उनके निर्मल नीर को लम्बे अर्से तक सड़ने मत दीजिए । उसका यथासमय सुख-समृद्धि और संतुष्टि के लिए उपयोग कीजिए । इसी में उनकी सार्थकता है । नारी और नदी बँधी रहना भी पसन्द करती है, पर उनका उपयोग-उपभोग होता रहे ।....

नदी पर बाँध बाँध दिया जाए, पर उसके जल का उपयोग न किया जाए, तो या वह बाँध को ही तोड़कर, प्रचंड धार हहराती बह जाती है, या उसका पानी कहीं बीच में ही अपने निकास के लिए छिद्र खोज लेता है और, बाँध की बन्दिशों के बावजूद, वह अपनी इच्छा-पूर्ति कर लेती है ।..

यही बान नारी की है । नैतिक-सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन उसे अभीष्ट नहीं, पर उसकी इच्छा-पूर्ति होती रहे । वह बिना प्यार किए जी ही नहीं सकती । औरत और बिना प्यार के जी ले, यह संभव तो है, पर फिर वह नफरत को साथ लेकर जीती है ।..

उसे पति मिले, जो उसे पुत्र दे सके । पुत्र देने के बाद भले ही पति उसकी शारीरिक-माँग को ठुकरा दे—पुत्र की ममता के गंगाजल से

वह बहुधा अपने हृदय का सारा उन्माद धो डालती है। ...

पर, नर्मदा को न पति ही मिला... न पुत्र ही... यदि बाँकेबिहारी की वह निशानी ही रहने दी जाती ?...

×

×

×

यह सुधि आते ही, नर्मदा अपनी सुधि भूल गई। उसे लगा, बाँकेबिहारी का वह प्रतिबिम्ब उसके आँचल-दर्पण में उतर आया है। ... उसे अपने युगल-पयोधर शरीर से विद्रोह करते-से लगे। ... ऐसा लगा, उस प्रतिबिम्ब के नन्हे-नन्हे हाथों-होंठों का स्पर्श पाने के लिए, नर्मदाबेन की मजबूत चोली को तड़का देना चाहते हैं... ऐसा ही, बिल्कुल ऐसा ही विद्रोह ये पयोधर उन दिनों भी तो करते थे, जब उस मासूम बच्चे को कत्ल कर दिया गया था ?... तब कभी-कभी नर्मदा-बेन अपनी नौकरानी शारदा के छोटे बच्चे को अपनी गोद में लेकर, उसे शाक-भाजी लाने लगा देती थी और कमरे के किवाड़ बन्द कर, अदम्य-आवेग के साथ अपना स्तन उस बच्चे के मुँह में दे देती थी। ... शारदा की सूख चली छातियों की जगह, नर्मदा की दूध भरी छाती पाकर, बच्चा दोनों हाथों से कसकर स्तन पकड़ लेता और आँखें मूँदे, बड़ी देर तक पीता रहता। ...

जब उसका पेट भर जाता, तो अपना दुधैला-मुँह नर्मदाबेन की ओर उठाकर, किलकारी भरने लगता... और नर्मदा को ऐसा लगता, कि वह इस बच्चे को छाती से चिपटाए दूर भाग जाए... कहीं बहुत दूर, जहाँ न नगीनभाई हो, न शारदा हो, न यह देसाई-भुवन की सात मन्जिलों की ऊँचाई हो... जहाँ सिर्फ उसके पयोधर हों और यह दुधैला-बच्चा हो। ...

ऐसा भी न हो सका। ... इतना बड़ा दुस्साहस वह न कर सका पर, शारदा को उसने नौकरानी से सहेली बना लिया और फिर एक दिन यथेष्ट धन लेकर शारदा, नौकरी छोड़कर, अपनी ससुराल चली गई। अब उसका बेटा चेलाराम कालेज में आठवीं में पढ़ता है। उसका

सारा खर्च नर्मदाबेन के फण्ड से जाता है।...

सहसा, नर्मदा ने अपना ब्लाउज खोल डाला। चोली भी खोल डाली और आत्म-मुग्धा-सी स्तनाग्रों पर अँगुली फेरने लगी। उसे ख्याल आया, अड़तीस की उमर में भी उसके उरोज इतने ठोस हैं। बच्चे होते, दूध पीते, तो कब के ये भूल गये होते। रीते हो गए होते...पर, जिसे ईश्वर ने उस मासूम बच्चे के लिए, उसके पयोधरों में भरा वह अमृत तो सदा कैद ही रह गया ? बँधा ही रह गया ?...

और अमृत कैद में रहता-रहता विष बन गया। जैसे जेल के अपराध-पूर्ण वातावरण में, शरीफ आदमी भी बदमाश बन जाता है कसी हुई, सख्त चोलियों और चुस्त ब्लाउजों की कैद में उसके आँचल का अमृत भी बदमाश हो गया है। और यह कैद अमृत ही तो जहर बनकर नर्मदा के जीवन को व्यभिचार की लम्बी-लम्बी सजाएँ दिलाता रहा है !...

नर्मदाबेन ने बाँएँ पयोधर के कुचाग्र को जोर से दबा दिया... एक हलकी-सी चीख आते-आते रह गई...ऐसा कई बार हुआ है, जब नर्मदाबेन व्यभिचार की सेज सोई है...अमृत-कलशों को बच्चे के हाथों से बचाकर, रुपए और रुप के भूखे तस्करों के हाथों में देकर, कितनी बड़ी गलती, कितना बड़ा पाप करती आई है नर्मदा ?...

और नर्मदा की आँखों से आँसू बह चले...उसने चोली को फाड़ कर फेंक दिया...ब्लाउज को जमीन पर पटक दिया...

तभी बाहर, बरामदे में पैरों की आवाज सुनाई पड़ी।

दरवाजे पर कृष्ण खड़ा था...लौटने लगा था। एक लाज-सी नर्मदाबेन को सुरसुरा गई और उसने साड़ी के पाट से अपने पयोधरों को ढँक लिया...“आओ, कीसण जी !...”

×

×

×

कमरे की दीवार से पीठ-टिकाए खड़ी ‘फावरे ल्यूबा’ की बेटी के दोनों बेटों में से, बड़ा बारह बरस पूरे कर चुका था और छोटा दस

वरस का, बड़े भाई को टुकुर-टुकुर देख रहा था । तीसरी नाजायज यौन-सम्बन्ध की औलाद, सामाजिक, पारिवारिक मान्यता-प्राप्त अपने दोनों भाइयों से मुँह छिपाती फिर रही थी । दोनों पर एक हसरत-भरी नजर टिकाए, वह अपनी छोटी-सी कुटिया के अन्दर ही घूम-फिर रही थी ।

“मुझे इस बात का बड़ा दुख है, सेठानी जी, कि मेरी मनहूस-कविता के कारण आज की गोष्ठी तो गड़बड़ हुई ही, आपके कोमल हृदय को भी ठेस पहुँची ।” कृष्ण ने विनयपूर्वक कहा । वह एक डर-सा महसूस कर रहा था । पर, नर्मदाबेन की सौम्य-आकृति उसे भीति से बचा रही थी ।

नर्मदा उसे एकटक देख रही थी । पतली साड़ी के पाट से ढके उरोज, स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, पर जैसे वह इस स्थिति से लापरवाह थी । हाँ, फाड़कर फेंकी गई चोली को पाँव के अँगूठे से सरका-सरका-कर, उसने खाट के अन्दर कर दिया ।

“आपने तो सौजन्य-वश कुछ कहा नहीं, पर कवियों ने मेरी बड़ी भद उड़ाई । मेरा अपमान किया ।” ‘कृष्ण’ की आँखों में नमी-सी आ गई—“और मैंने संकल्प कर लिया है, जी ! आजसे किसी कवि सम्मेलन या गोष्ठी में कविता नहीं पढ़ूँगा ।”

“अरे, ना...ना...” अब नर्मदा हँस उठी—“तुमने गलत फहमी थई गई छे । ए बीजा कवि लोको तो पैसा ना लोभी शायर छे । ए लोको शायरी-कविता थी बधु महत्व पैसा अने वाह-वाही ने आपे छे । हृदय नी बातो, ए लोको कही सकता नहिं, जाणी सकता नहिं ।... शू ?”

“जी...जी, में गुजराती तो समझता ही नहीं ।... बम्बई आए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं।” कृष्ण बोला ।

“माफ करजो । हूँ तो भूली गई हती...अरे, मैं तो फिर गुजराती में ही बोलने लगी ।” नर्मदाबेन हँस पड़ी—“बात यह है, कि, बच-

पन से ही मैं गुजराती-भाषी लोगों के बीच रही हूँ। शादी से पहले बाँदरा वाले बँगले में रहती थी। वहाँ भी आस-पास पारसियों की ही बस्ती थी। वैसे भी जन्म से गुजरातन हूँ न ? ... एक अभ्यास पड़ गया है। हिन्दी बोलना आता नहीं हो, ऐसी बात नहीं। ... पण, एवूँला गेछे ... हिन्दी की पुस्तकें भी पढ़, समझ लेती हूँ। कभी बी० ए० तक पढ़ाई हुई थी। ... पर, एक जमाना गुजर गया। ... अब सब भूला-सा लगता है। ...

“हिन्दी तो काफी अच्छी बोल लेती हैं आप ? तो हिन्दी-भाषियों-से हिन्दी में ही बातें किया कीजिए न ?”

“बड़ा अटपटा लगता है। ... बिना स्वभाषा बोले, बोलने का आनन्द कहाँ आता है ? ... फिर आदत कुछ ऐसी पड़ गई है, लाख दूसरी भाषा में बातें करूँ, यदा-कदा गुजराती में बोल ही उठती हूँ। ...” नर्मदाबेन फिर हँस पड़ी।

कृष्ण, इस उन्मुक्त हँसी में डूब-सा गया। निरुद्देश्य ही उसे बुलाया न गया होगा ? और वह है, कि कुछ पूछ ही नहीं पा रहा। ...

“केम ? ... कॉफी या चाय ? शूँ मंगावूँ ?” नर्मदा ने पूछा।

“चाय मंगा लीजिए” कृष्ण बोला— “पर, एक बात पूछूँ ? इस बार मेरी कविता सुनके आप इतनी रुष्ट हुई, कि आपने गोष्ठी ही भँग करवा दी ! क्या, सचमुच, मेरी कविता इतनी बुरी लगी ?”

“ना, रे ना।” ... स्नेहपूर्ण-स्वर में नर्मदाबेन बोली— “सच तो यह है कि आपकी कविता से मेरे अतीत की कुछ मर्मबेधी-स्मृतियाँ उमड़ आई थीं। बहुत ही दर्दिली, बहुत ही सुन्दर कविता है आपकी ... और उसे अभी मैं और सुनूँगी ... इसीलिए आपको बुलाया भी है। ... गयादीन भैया रे, चाय नी ट्रे जरीक जल्दी लावजो। ... ये दूसरे कवि लोग तो पेद्रू और चापलूस हैं। कविता को इन्होंने कालाबाजार करने का साधन बना लिया है। ये लोग आदमी का चेहरा देखकर गाते हैं, मन पढ़कर नहीं। सम्मेलन-मुशायरों में, में कई बार गई हूँ। ... सब जगह ये रहते

हैं। एक ही कविता सौ-सौ बार पढ़ते हैं।...जैसे दो-चार नुस्खे बना कर ही, कोई 'लिमिटेड' कम्पनी अपना बिजनेस चलाती है।"...और नर्मदाबेन फिर हँस पड़ी। चाय की ट्रे आ गई थी।...

"गये वर्ष कामा-हाल में एक सम्मेलन हुआ था। कलकत्ते का एक कवि था। बिलकुल नौजवान। नाम था 'शेखर'। उसकी कविता अब भी दुहरा लिया करती है।..." नर्मदाबेन गुनगुनाने लगी

'गीत बनकर बह रहा है' लोचनों का नीर...

गीत लिखता मैं नहीं, लिखती हृदय की पीर।...

"कैसी मर्म-भरी व्यंजना है ? केम छे के नहिं ? दूसरी कविता थी 'मैं दुनिया का दिल पढ़कर गाता हूँ।'...खरेखर, बगैर हृदय की भाव-नाओं ने बाँची ने, कोई पण मर्मस्पर्शी कविता करी नहिं सके।"

कृष्ण को आश्चर्य हुआ, यह सेठानी कहाने वाली औरत हृदय और हृदय की भावनाओं पर इतना जोर देती है ? भाव-सत्ता की ऐसी प्रखर पारखी है ?...

"समय अधिक हो चला है। सेठ जी कब आते हैं ? सेठजी का ध्यान यकायक आने से, कृष्ण सकपकाए-स्वर में बोला—"मैं अब चलूँगा।..."

"सेठजी अपनी 'बिजनेस' से बारह-एक से पहले नहीं लौटते।..." नर्मदा साग्रह बोली—"आपको जाना कहाँ है ? रहते कहाँ हैं ?"

"चर्नी रोड। एक दोस्त के यहाँ रहता हूँ।"

"मेरा ड्राइवर आपको छोड़ आएगा।..." नर्मदा बोली—"गयादीन भैया...मेहरबानसिंह ने मोकलावी ने, संतसिंह सरदार ने कहेलाओ के बार बागे जरा कीसण जी ने चर्नीरोड कार ऊपर छोड़ी आवे।... आप अपनी वही कविता पढ़िए...और हाँ, आज तो कविता पढ़ने के बाद, आप विदा हो जाएँगे।...पर, कल सबेरे अवश्य आइए...कार भेज दूँगी।...और नर्मदाबेन ने पलँग की पाटी से अपना सिर टिका लिया।

कल रात विदा करते समय, सेठानी नर्मदाबेन ने सौ रुपए बलात् दे दिए थे। ...

रात-भर जब तक नींद नहीं आई, कृष्ण उन्हें गेरुए कुर्ते की जेब में टटोलता ही रहा। बम्बई जीवन के इन सात-आठ महीनों में, इतनी बड़ी रकम पहली बार मिली थी। उसे कल की बातें एक स्वप्न-सी लग रही थीं। ...

‘इण्टर’ करने के बाद, वह बम्बई चला आया था। तब से वह बेकार ही था। बड़े-बड़े मनसूबे लेकर आया था। अपनी कवित्व-शक्ति पर भरोसा था। वह प्रदीप, भरत व्यास और शैलेन्द्र की तरह नाम और पैसा कमाने का स्वप्न लेकर, बम्बई आया था। पर, इन सात-आठ महीनों में, पैसे के नाम पर कवि-सम्मेलनों से पचास रुपए कमाए। पचास घर से ले आया था। बाकी खर्चा होटल की नौकरी से चलता रहा। रुपए जब मिले, जब बचे, घर को भेज दिए। विधवा माँ, कुंवारी बहन और स्कूल पढ़ते दो छोटे-छोटे भाइयों के लिए।

अपनत्व का तागा रायबरेली से बम्बई तक बिजली के तार-सा टँगा रहा। इस सिरे से, उस सिरे तक—स्मृति के हर क्षण में एक हलचल-सी व्यापती रही।

चर्नी रोड़-स्थित ‘श्री गोपालपुरी हाउस’ में, राधाकिसन ‘आर्डरवाले’ का काम करता था। शाम के दो-से-ग्यारह-तक उसकी ड्यूटी रहती। कभी कार्य-वश छुट्टी ले लेता, मिल जाती। होटल के मालिक उदार-हृदय गुजराती थे। ...

दुकान के पिछवाड़े, गिरगाम कोर्ट और स्वस्तिक सिनेमा के बीच

की जगह, होटल का कारखाना था—जहाँ होटल की विक्री का सामान तैयार होता था।...दही बड़े, पकौड़ी, पानी पुरो, और कचौरी-समोसा-रगड़ा।...

वहीं, और नौकरों के साथ, राधाकिसन भी पड़ा रहता। अवकाश के समय, लिखता। पत्रिकाओं में भेजता। साहित्यिकों से सम्पर्क साधने का प्रयास करता। पर, धीरे-धीरे उसे मालूम हो गया—बम्बई में एक तो हिन्दी के अच्छे साहित्यकार हैं ही नहीं, जो ग्रीन-पौन हैं, अष्टावक्र की तरह एंठे रहते हैं। आठ ठौर। आठों पहर।...

कवि-सम्मेलनों में जाने की शुरुआत तब हुई, जब राधाकिसन का परिचय 'शाकिर' से हुआ। उर्दू का नया-नया शायर। मुशायरों-सम्मेलनों का दायरा दिखा-समझाकर, वह तो लाहौर चला गया, पर चिट्ठियों में उसकी गजलों की पंक्तियाँ आती रहीं—

“तुम भुलाते रहो प्यार की जिन्दगी,
हम इस भूलने को भुलाते रहें।
शमअ-ए-मौहब्बत शबे-जिन्दगी
तुम बुझाते रहो, हम जलाते रहें !”...

मौर उत्तर में, राधाकिसन लिख देता—

“प्यार के हाथ से दर्द की मेंहदी
तुम मिटाते रहो, हम रचाते रहें—
उम्र की राह में तुम मिलो, ना मिलो...
दर्द के गीत तुमको बुलाते रहें ! . .”

और यों प्यार-मोहब्बत का रिश्ता लाहौर-बम्बई की दूरी पाटता रहता था !...

सम्मेलनों में कविताएँ पढ़ने के लिए, उसने उपनाम 'कृष्ण' रखा।

इसी नाम से पत्र-पत्रिकाओं में भी लिखता। होटल का जीवन व्यतीत करते-करते, उसकी अनुभूतियाँ अवश्य प्रखर हुई थीं। चिन्तन-मनन की वेदी पर अनुभवों की घृताहुति रचना की अग्नि-शिखाओं को प्रज्वलित किए चली गई ! ..

पर, कल की घटना तो एक स्वप्न-सी लग रही थी। जैसे किसी बिना टिकिट सफ़र कर रहे यात्री को, टी० टी० ने पकड़कर, 'फर्स्ट क्लास' के डिब्बे में यह कहकर, बिठा दिया हो—“कौन-से स्टेशन उतरना है ?”...

कल रात वह होटल के अगले मोड़ पर ही उतर गया था। आज वहाँ पहुँचा, तो कार के अंदर बैठा सरदार संतसिंह 'दो पत्तर अनाराँ दे ..' गा रहा था। ..

×

×

×

“एक आगो ला दोन...दोन आगो ला तीन...”

भुलेश्वर की सँकरी गैल संतसिंह सरदार की जोरू (कार को वह अपनी 'जोरू' कहा करता था, जो सवारी के काम तो आती ही थी, रोजी-रोटी भी दे रही थी) की रफ़्तार धीमी हो चली थी।

“एक आगो ला...”

चलती कार से ही, कृष्ण ने बाहर की ओर देखा।

“एक आगो ला...” केले वाली उसे देखकर, थोड़ा हँस दी। कल रात वाली ही थी। कृष्ण ने उसे नर्मदाबेन के यहाँ देखा था, उसने भी कृष्ण को वहाँ देखा होगा। शायद, शायर समझकर हँस दी होगी? कभी-कभी तो सिर्फ़ एक नज़र देखे हुए को देखकर भी हँसी फूट पड़ती है !...

पर, ऐसा 'कभी-कभी' ही होता है !

“उतरो, शायर साहेब !...” संतसिंह सरदार चाबी घुमाते हुए बोला—“अरे, बाबू ! कभी एकाध शायरी गरीब लोगों को भी सुणा दिया करो ? असी भी पंजाबी बिच्च शायरी लिखदे पैये। त्वाड़ी

शायरी....”

कृष्ण ‘लॉन’ की ओर बढ़कर, सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। सरदार संत-सिंह ‘कुत्तर’ कहके, पगड़ी ठीक करने लगा। ‘कृष्ण’ की उपेक्षा ने उसका जी जला दिया—आखिर वह भी शायर था !...सरदार ने फिर दाढ़ी पर अँगुलियाँ फिराई—“दो पत्तर अनाराँ...”

×

×

×

नगीनभाई सेठ कल रात नर्मदाबेन के ही कमरे में सो गए थे। उनकी व्यर्थ की हरकतों से ज्यादा परेशानी, नर्मदाबेन को, उनकी तोंद से हो रही थी, जिससे उस आठ फुट चौड़ी पलंग पर भी सोने में दिक्कत हो रही थी।

नगीन भाई के शरीर की बनावट कुछ ऐसी हो चली थी, जैसे किसी त्रिभुज की दाईं-बाईं भुजाओं के शीर्षस्थ कोण-नोक पर एक बड़े वृत्त के ऊपर, एक छोटा वृत्त खींचा गया हो।...

कल की रात, बहुत रातों के बाद, नगीनभाई नर्मदाबेन की पलंग सोए थे। जैसे एक ही सराय में टिके हुए दो मुसाफिरों में से कोई एक, लम्बे अर्से के बाद, यह पूछने दूसरे के कमरे में चला जाए—“आपको किसी किस्म की तकलीफ, या असुविधा तो नहीं ?...”

नर्मदा उन्हें प्यार नहीं करती, यह जानते हुए भी, नगीनभाई यदा-कदा नर्मदा के पास चले आते हैं। इकतरफा छेड़खानी के बाद, चुपचाप सो जाया करते हैं। नर्मदा, अपनी ओर से प्रयास न सही, उनकी किसी हरकत का विरोध नहीं करती। नगीनभाई के प्रति वह एक कर्त्तव्य-सा अनुभव करती है। यह कर्त्तव्य-बोध उसे कचोटता है, कि उसने हर कदम गलत दिशा में बढ़ाया, हर रुख गलत अस्त्रियार किया।...

अगर कान्त से ही उसका विवाह हुआ होता ?...

तब, शायद, जीवन इतना असंयत-अमर्यादित न रहता। वह अपने नारीत्व को सार्थक करती, मातृत्व तक पहुँचती और प्यार शाश्वत-

सनातन प्यार में ही उसकी ज़िन्दगी बीत जाती ! ये विकृतियाँ, अमर्यादाएँ और अनैतिकताएँ न आतीं । यह घुटन, ये बेचैनियाँ नहीं आतीं । वह हहर-हहर-छहर नर्मदा-सी धार बहती रहती—चट्टानों की मजबूत बाँहों का सहारा लेती-लेती !

पर, उसके रूप-यौवन की नर्मदा को सहज-स्वाभाविक विकास नहीं मिला था । वह ऐसे मैदान की ओर मोड़ दी गई थी, जहाँ उसके चारों ओर रेत-ही-रेत बिछी थी । अपने बहाव से रेतों के टीले बनाते-बनाते जब वह थक जाती, तब वह लीक छोड़कर बहने लगती । पर, परती-धरती पर बहे जाने से मिला क्या ?—

फसल न लहरा सके, तो नदी के नीर की सार्थकता कहाँ रही ?...

नर्मदा ने गौर से नगीनभाई की ओर देखा !

सुबह हो गई थी ।

‘कृष्ण’ आने ही वाला है ।...

एक खयाल फिर आया, नगीनभाई ने उसे कितनी ग़लत दिशाओं में मोड़ा है ? ‘बिजलिस’ और वेश्याओं से यह व्यक्ति कभी इतना समय क्यों नहीं निकाल पाया, कि नर्मदा का प्यार भले ही न पा सके, आत्मीयता तो पाए ? इस व्यक्ति ने क्यों उस पर ऐसी पाबन्दियाँ लगाईं, कि आज्ञादी का हर दौर उसे ग़लत ठौर ले गया ? क्यों इस व्यक्ति ने ऐसा महसूस नहीं किया, कि प्यार-पर-प्यार देके वह नर्मदा को भी जीत सकता है ?...

चूल्हे पर चढ़ाया हुआ दूध लापरवाही से ही उबल कर चूल्हे पर गिरता रहता है, जब तक आग बुझ न जाए । अगर, उसे कलछी से चलाता रहा जाए, तो बढ़िया रबड़ी तैयार होती है...खोया बनता है ।...ऐसी कुशलता न हो, इतना लगाव ही न हो, तो नीचे आग जलाकर, चूल्हे पर दूध की कढ़ाई चढ़ा देने से लाभ नहीं, नुकसान ही होगा न ?...

“सेठानी बाई...” गयादीन ने बिजली का बटन दबाया । आवाज

तो नहीं, धंटी नर्मदा को सुनाई दे गई। उसने दीवार की ओर देखा...

‘फावरे ल्यूवा’ की बेटी के सबरे के बेटों में से बड़ा सात बरस का ही रह गया था, छोटा, साढ़े-दश बरस-पाँच महीने का हो चुका था।...

“ओहो...हाड़ा दश थई गया!...” नर्मदाबेन साश्चर्य बोली। जान लिया, ‘कृष्ण’ आया होगा। नगीनभाई की आँखें भी उघड़ चुकी थीं। ज़िन्दगी में पहली बार सोमवार को इतनी देर घर पर रह गए थे।...

नगीनभाई जल्दी-जल्दी उठे—“मिल जावानो छे।...”

नर्मदा, गयादीन को सेठ जी के स्नान का प्रबन्ध करने का आदेश देकर, बोली—“गई काले हूँ जे शायर” ‘कीसरा’ नो जिकर कर्गु हतुं, तेओ आव्या छे।...” फिर आवाज़ दी “केम भैया जी, कीसरा जी आवी गया छे ने ? तेरो अहि मोकलावजो।...”

गयादीन भी गुजराती ठीक से नहीं समझता था। वह सेठानी की आवाज़-आकृति से आदेश का गंतव्य पहचानता था।

कृष्ण ने दोनों को नमस्कार किया। सेठ जी की आँखों में ‘हिन्दी-भवन’ वाले कवि-सम्मेलन का दृश्य उभर आया, जब उन्होंने ‘हृदय’ जी के लिए लिफ़ाफ़े में सौ रुपए भेजे थे, और नर्मदाबेन ने, चपरासी के हाथ से लिफ़ाफ़ा लेकर यों लिखा था—“महेरबानी करीने तमारा नवा शायर ने आपो . . .”

उन्होंने दुबारा गौर से कृष्ण को देखा—चौबीस-पच्चीस वर्ष का स्वस्थ-सुन्दर नवयुवक। कपड़ों से सादगी और गरीबी टपक रही थी। आँखों में एक भोलापन भी, यौवन भी।...

नगीनभाई यह कहते हुए, दरवाजे की ओर बढ़े—“एनी शायरी पण सारी, शायर पण सारूँ—नर्मदा तारी पसन्दज बहु सारी छे।...”

१ इसकी कविता भी अच्छी, यह कवि भी अच्छा। नर्मद, तुम्हारी पसन्द ही बहुत अच्छी है!...

नर्मदा ने महसूस किया, आज सेठजी के स्वर में अपार-वेदना है। उसका मन दुख गया। बोली—“चाय पीवा अहिज आवजो।”...

पर, बाद में गयादीन से मालूम हुआ—जिन्दगी में पहली बार, आज सेठ जी बिना नहाए ही चले गए हैं। ..

×

×

×

बातों-बातों में, नर्मदाबेन बोली—“सुनो, कृष्ण जी ! कल तक मैं आपको गुजराती लहजे में ‘कीसण जी’ कहा करती थी। पर दरअसल हमारी गुजराती में ‘कृष्ण’ को ‘करसन’ कहा जाता है। मैं आज से तुम्हें ‘करसन बाबू’ ही कहा करूँगी। ...बुरा तो नहीं लगेगा आपको ? ...”

कभी ‘आपको’, कभी ‘तुम्हें’... कभी ‘कीसण जी’ और कभी ‘करसन बाबू’... कितना अटपटापन, कितना अल्हड़पन है इन प्रयोगों में? स्वयम् नर्मदाबेन ऐसी क्यों है ? उसके शरीर और वस्त्रों से वह भले ही सेठानी लगती हो, बात कुछ इतने अपनापे से, इतनी उन्मुक्तता से करती है, कि कृष्ण बार-बार बातों में ही रह जाता है, पूछ नहीं पाता कि आपने क्यों बुलाया है ?...

नर्मदाबेन सेठानी के परिचय में आना, उसे अभी तक एक स्वप्न-सा लग रहा था। जरा खुलकर बातें होने लगीं, तो कृष्ण का ध्यान अपनी वस्तु-स्थिति की ओर गया। संकोच के साथ बोला—“सेठानीजी, आप मुझे कुछ भी कहकर पुकारें, मैं बुरा नहीं मानूँगा। घर पर माँ को छोड़े, माँ के प्यार को खोए, एक अर्सा हो गया है। ...आपको देख-कर, ऐसा लगता है, जैसे अपनी माँ को...”

“करसन...” नर्मदा बेन चीख-सी उठी। जैसे किसी भयंकर सर्प ने उसपर आक्रमण किया हो। उसकी आँखों में एक अजीब विकृति उभर आई थी। क्रोध और संताप से उसका गौर मुख कुछ स्याह पड़ गया था। ...

कृष्ण तो विस्मय-विस्फारित नेत्रों से सेठानी को देखता ही रह

गया। चाय का पूरा प्याला छलककर, उसकी साड़ी पर गिर गया था और गरम चाय कई धार बहती नाभि तक पहुँच गई थी। क्षण-भर पहले ही सेठानी के स्वर में मिठास थी, आँखों में मुग्धता और मुँह पर एक अपूर्व कांति... और, एक पल में ही जैसे उसपर 'हिस्टीरिया' का दौरा पड़ गया था।

खन्...न्...न्...सेठानी के हाथ का खूबसूरत प्याला फर्श पर गिर गया। वह थर-थर काँपने लगी थी। उसकी आँखें फटी-फटी-सी शून्य पर टिकी थीं। उसके होंठों के एक बुदबुदा-सा उठ रहा था।...

कृष्ण ने बदहवाशों की तरह उठकर, ऐंठकर एक ओर लटकती, नर्मदाबेन को सँभाला। उनका तलुवा सहलाया। उनके सिर को अपने वक्ष से टिकाकर, गले के नीचे का हिस्सा मला। वेगवती साँसों के साथ नर्मदा के पृथुल पयोधर उसके हाथ से टकरा जाते। कनपटियों को सहलाते-सहलाते, गौर, रक्ताभ कपोलों का स्पर्श एक अजीब-सी अनुभूति दे जाता...। सहसा, कुछ स्मरण आने से, उसने सेठानी का चप्पल उठाया और उसकी नाक से लगा दिया। किसी नौकर को पुकारने का, उसे साहस नहीं हो रहा था। नर्मदाबेन के भारी शरीर को अपने से टिकाए-टिकाए, उसे ऐसा लग रहा था, जैसे उसके शरीर-मन का भार एकदम शून्य हो चुका है।... इतना घबरा चुका था वह।

आक् छीं...आक् छीं...आक्...आक्...

लगातार कई छींके आई और नर्मदा ने हौले-हौले अपनी आँखों को खोला, जैसे इससे पूर्व उसने कोई भयानक दुःस्वप्न देखा हो। उसकी आँखों में एक डर-सा समाया हुआ था। उसने आधी आँखें उधाड़े, बड़ी करुण-दृष्टि से कृष्ण की ओर देखा—“करसन !...”

पहाड़ की बहुत ऊँची चोटी से गिरते समय, भयाक्रांत हो जोर से चीखने के बाद, बीच में ही किसी अवधान से अटककर, हल्की चोट खाकर, जैसे कोई कराहता है—कुछ ऐसी ही प्राण-रक्षा की और पीड़ा की अनुभूति नर्मदा के स्वर में थी।

“मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ, कि कल भी और आज भी मेरी बातों से आपको...”

‘ना-ना’ अपनी तर्जनी से करते हुए, नर्मदा ने अपनी बाँहें कृष्ण के गले में डाल दीं और उसके वक्ष से सिर टिकाए-टिकाए—अपनी आँखें बंद कर लीं।

“सेठानी बा...” हठात् आकर गयादीन कंधे के भीने भाड़न को अपने माथे पर डाल, वापस चला गया। नर्मदा के रोमांस उससे छिपे न थे। बीस वर्षों की नौकरी के अनुभवों ने उसे जता दिया था, कि गरीब और मेहनत करने वाले रोटियाँ ज्यादा खाते हैं—अमीर और आराम करने वाले, ऐसी-वैसी बातें ज्यादा करते हैं, अजीबोगरीब हर-कतें ज्यादा करते हैं।...

गयादीन के आने, चले जाने से कृष्ण भय-सा महसूस करने लगा। अजीब अनिश्चय और संशय की-सी स्थिति में वह था। जो कुछ भी हुआ था ऐसे आकस्मिक ढंग से, कि सिर्फ अनुभव ही कर सका, देख ही सका—समझ नहीं सका।...

और वह समझता भी क्या? यह सारी और पूर्व स्थिति एक आ-कस्मिक दैवी-अनुकम्पा-विडम्बना से अधिक कुछ नहीं थी उसके लिए। पर, अब अपने को विषम-स्थिति में पाकर, उसने गौर से सारी बातों को सोचा, तो उसे लगा—नासमझ नहीं है वह, अलबत्ता आकस्मिक घटनाओं और अ-देखे वातावरण के कारण अटपटा जरूर गया है।...

उसे खयाल आया, उसे यहाँ लाने के आकर्षण के मूल में सिर्फ उसकी गरीबी थी। होटल की नौकरी से, एक तो वह ऊब चला था। दूसरे, सिर्फ बीस रुपए मासिक वेतन मिलता है घर पर परिवार उसकी आस लगाए रहता है। विधवा माँ, छोटी बहन, छोटे-छोटे दो भाई... सब उसकी आँखों में समाए रहते हैं। सबकी बाँहें उसके लिए फैली रहती हैं।...और कृष्ण सोचता आया था, कि कह-सुनकर, वह नर्मदा बेन से किसी मिल में क्लर्की या ऐसी कोई नौकरी पाने की चेष्टा

करेगा ।...

लेकिन, यहाँ तो वह एक कल्पनातीत-स्थिति में फँस गया है ।... सेठानी आखिर उससे क्या चाहती हैं ?...

‘क्या चाहती हैं ?’ प्रश्न के उठते ही, कृष्ण की आत्मा एक अनिश्चित-असंयत विचार से काँप-सी उठी । उसने फिर नर्मदा की ओर देखा । उसकी आँखें पूर्ववत् मुँदी थीं । मुख पर ऐसी छलहीन मुग्धता थी, जैसे कोई बच्ची अपनी माँ की गोद में सो रही हो ।...

इस अजीब सेठानी को देख-देख कर, कृष्ण का मन भर-भर आया । उसे लगा, जैसे कोई अमूर्त वेदना और आत्मीयता यों साकार होकर उसके वक्ष से लग गई है ।... लेकिन, वह इससे क्या समझे ? वह ऐसे में क्या करे ?... एक खयाल आता था, कहीं सेठानी वासना के वशीभूत तो नहीं है ?... माँ... सुनके ही वह चीख उठी थी... तो, क्या, तब उसके अंदर की उद्भूत कामुकता चीख उठी थी ?...पर यह भी तो संभव है, कि सेठानी को किसी मर्मवेधी-स्मृति ने भभकोर दिया हो ?...

बातों-बातों में नर्मदाबेन पुत्र होकर मरने की बात बता चुकी थी, पर बाँके का जिक्र नहीं किया था ।...

नर्मदाबेन की बंद आँखें क्षण-भर को उघड़ीं और उनसे बड़े-बड़े आँसू लुढ़क पड़े...और नर्मदाबेन ने पलटकर, अपने पयोधरों को कृष्ण के वक्ष से लगाकर, अपना मुँह उसके पीठ की ओर झुका दिया, कंधे पर टिकाते हुए । कृष्ण ने चाहा, वह सेठानी को आलिंगन से छुड़ाकर भाग जाए ?...कहीं ऐसे में सेठ आ जाएँ ? कहीं ऐसी बात नौकर सेठ से कह दें ?...

और उसने नर्मदाबेन को अपने वक्ष से अलग कर दिया । उसकी आँखों से अनवरत अश्रु-प्रवाह जारी था । कृष्ण खड़ा हो गया । नर्मदा बेन ने पुकारा — “करसन . . .”

पर, कृष्ण न रुका । बाहर चला आया । लेकिन, जा नहीं सका ।

बारामदे से अन्दर लौट आया। सेठानी पलंग पर औंधे-मुँह पड़ी, बिफर बिफर कर रो रही थी। कृष्ण को देखकर, इस बार उसको होठों पर हल्की-सी मुस्कान उभर आई—“आओ, करसन बाबू... आओ, बेसी जाओ।... करसन...”

कृष्ण पास की ‘इज़ीचेयर’ से कुहनी टिकाए, पलंग के निकट खड़ा हो गया—“आपकी इस करुण-मनोदशा और दारुण-मनोव्यथा के आग्रह से लौट आया हूँ, सेठानी जी !...”

इतना कहकर, फिर कृष्ण कुर्सी पर बैठ गया। क्षण-भर कोई बात सोचता-सा, बोला—“एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ, सेठानी जी ?...”

“शुं कहेवानो छे ?... करसन... तारे शुं...” नर्मदाबेन ने पलंग पर से झुककर, कृष्ण का हाथ अपने हाथों में ले लिया। उसका स्वर, उसके हाथ, उसकी आत्मा—सबमें एक कम्पन-सा व्याप रहा था... “शुं कहेवानो छे ?... शुं कहेवानो छे ?... शुं कहेवानो छे ?...”

“वैसे में एक अदना आदमी हूँ। एक बिल्कुल ही मामूली और बेकार लड़का... और दरअसल मेरी यह गरीबी-बेकारी ही मुझे आप तक खींच लाई।... पर, ऐसा मुझे लगता है, आपके मन में जो अप्रत्याशित भाव—विपर्यय होते मैंने देखा है, उसका कहीं-कुछ सम्बन्ध मुझ से भी है। क्यों ? ऐसा मुझे लगता है, आप मुझसे कुछ कहना चाहती हैं, पर द्विविधा-वश कह नहीं पाती हैं... मुझे बड़ा विस्मय है, सेठानी जी... मुझे लेकर आप इतना उलझ क्यों गई हैं ?”

नर्मदाबेन एक उसाँस-सी लेकर, कृष्ण को देखती रही। कृष्ण ने अपने गेरुए कुर्ते की जेब से नोट निकाले और नर्मदा की खुली-हथेली पर धर दिए—“आप बहुत बड़े घराने की भद्र महिला हैं। मैं एक बिलकुल निचले स्तर का नौकर हूँ। इसलिए चला आया था, कहीं किसी ठौर कोई रोजी-रोटी लगा देंगी आप। घर पर विधवा माँ और भाई-बहनों को बे-आस-आसरे छोड़ आया हूँ।... पर, आप तो खुद ही

बहुत उलझ गई लगती हैं ।... ये रुपए आप रखिए । मेरी कविता का मूल्य मैं नहीं ले सकता, क्योंकि उसने आपको उद्भ्रान्त और असंयत ही किया है ।... लालच तो था । आज दोपहर घर को मनीग्रॉंडर करने का इरादा था ।... पर, आप रखें अब । रुपयों के लिए नहीं, नौकरी के लिए नहीं—इतना-सा आग्रह अवश्य है, कि आप अपने मन की बात मुझे बता दें, कि क्यों मुझे लेकर आप इतनी उद्भ्रान्त और अस्थिर-चित्त हुई हैं ?... ताकि, यहाँ से जाने के बाद, मैं कोई अंतर्द्वन्द्व महसूस न करूँ ।...

नर्मदा पलंग पर से उठी, नोट उसने अपने तकिए के नीचे रख दिए । सिरहाने-रखी सुराही से पानी ढाला और गटागट पीकर, कृष्ण की ओर देखकर, एक दर्द-भरी हँसी हँस दी—“मारी वर्तमान मनस्थिति नो परिचय मेलवा, तमने मारा जीवन ना कईक विगतो नी ओल-खाण करवी पड़शे ।...”

कृष्ण ठीक से समझ नहीं सका ।

“ओह, तुम गुजराती तो जानते ही नहीं...” नर्मदाबेन हँस पड़ी—“पानी पियोगे ?” अपने जूठे गिलास में ही पानी ढालकर, नर्मदाबेन कृष्ण के पास ले आई—“जीवन में पहली बार दूसरे किसी के लिए अपने हाथों पानी ढालकर पीने का आग्रह कर बैठी हूँ... वैसे कभी अपने लिए ही नहीं ले पाती... ” और उसके प्रशस्त ललाट पर एक चमक-सी व्याप गई । उसका वैभव और स्वामित्व-पूर्ण जीवन जैसे पहली बार आसन से उठ रहा था, देहरी से भुक रहा था ।...

नर्मदाबेन के आहूत और आत्मीयतापूर्ण-आग्रह को सहसा कृष्ण ठुकरा न सका । उसने चुपचाप पानी पी लिया ।...

“सुनो, करसन...” नर्मदाबेन उठकर, बैठ गई—“मदारी अगर अपनी नचैया बंदरिया रानी से भी ज्यादा अनाड़ी हो तो खेल का अंजाम क्या होगा ? ‘बैडमिण्टन’ की ‘काँक’ को गुल्ली-डण्डे के डण्डे से खेला जाए, तो कैसा रहे ?... और नर्मदा को उसकी स्वाभाविक गति

से, गंतव्य-दिशा से वंचित कर दिया जाए, तो कैसा हो ?...”

और नर्मदाबेन ने एक वर्षों-पुराना कागज कृष्ण के हाथों में थमा दिया—कृष्ण उसे देखता रहा, किसी जासूसी-उपन्यास के ‘क्लाइमेक्स’ की तरह ।...

चित्र में ऊपर नदी उल्टी दिशा में बह रही थी । पहली बहान की दिशा के पत्थर-पौधे सूखने लगे थे । नीचे एक पत्थर था, जैसे उसे छोड़ कर अभी-अभी कोई लहर गई हो—और उस पत्थर पर खुदा हुआ था !...

X H83/M42K X H3340 X

“कान्त मेरे कालेज जीवन का साथी रहा । उसे ही जीवन-साथी बनाने का स्वप्न में देखती रहती थी...पर, हुआ वही, जो एक दिन कान्त ने कहा था—“जवेरी, यहाँ प्यार को ‘रिसीव’ कोई और, ‘गाइड’ कोई और करता है ।...’...” —नर्मदाबेन की आँखों में फिर आँसू आ गए—“और जब मेरी शादी एक षड्यन्त्र की तरह, अचानक ही हो गई । उसने मुझे कार की खिड़की से गुलदस्ता भेंट किया ‘बधाई स्वीकारो, जवेरी !’...सेठ जी ने ‘थैंक्यू’ कहकर, वह गुलदस्ता खुद ले लिया और अनमने-मन से सूँघकर, यह कहते हुए, फेंक दिया—‘शादी के अवसर पर फूल भेंट करने वालों के हृदय में कुछ काँटे रहते हैं ।...’ ‘शायद’ उन्होंने यह अनुमान लगा लिया हो, कि वह गुलदस्ता मेरे किसी पूर्व-प्रेमी ने भेंट किया है ।...शायद, उन्होंने कान्त को देख लिया हो ?...लेकिन मैं न देख सकी थी । फिर एक बार...सिर्फ एक बार... उसे देखने का मौका मिला...ओह कितना मर्मवेधी-दृश्य था वह... कितना करुण...”

और नर्मदाबेन फफक-फफककर, रोने लगी ।

रुआँस थमते ही, नर्मदाबेन फिर बोली—“एक दिन मैं चौपाटी घूमने निकली...मैं अकेली कार में थी । खुद ड्राइव कर रही थी । चौपाटी का पुल देखा है...! वहीं एक फटे हाल, बदहवाश पागल किनारे

की दीवाल पर जगह-जगह, खड़िया मिट्टी से चित्र बनाता जा रहा था और नीचे अपना नाम एक पत्थर पर लिख रहा था ।

“मैं कार से उतरकर-टहल रही थी । आइसक्रीम खाते बच्चों को देखकर, मेरा मन भी आइसक्रीम खाने को हो रहा था । मैं आइसक्रीम लेने लगी थी, कि मेरी नज़र उस चित्र, उस पत्थर, उस नाम पर पड़ी...और आइसक्रीम एक भिखारी बच्चे के हाथ में थमाकर, मैं जल्दी-जल्दी आकर, कार की अगली सीट पर बैठ गई । और कार स्टार्ट करने लगी...तभी उस पागल ने, शायद कार स्टार्ट होने की आवाज़ सुनकर, मेरी ओर पलट के देखा...और अपनी चिथड़ों से लिपटी बाँहें फैलाए वह मेरी ओर दौड़ा...”

“तुम्हें विश्वास न होगा, करसन...!...”

“पर, ईश्वर साक्षी है । एक बार मेरा मन हुआ, कि कार से बाहर निकल कर, उसकी ओर अपनी बाँहें मैं भी फैला दूँ ।...ठीक ऐसे ही, जैसे वह मेरी ओर फैला रहा था...मेरा मन हुआ, उसे अपनी बाँहों में भरकर, कार में बिठा लूँ...फिर उसे कहीं दूर ले चलूँ...कहीं बहुत दूर...जहाँ उसे यह न कहना पड़े, कि, उसका प्यार महज़ एक ‘इण्टर-व्यू’ सिद्ध हुआ है, जिसमें परीक्षा कोई और दे, पास कोई और हो ।...”

ओह, करसन बाबू...कितनी व्यथा थी इन शब्दों में । प्यार कोई और करे, शादी कोई और ।...मन किसी और का हो, तन कोई और उठा ले जाए ।...

“पागल कान्त मेरे निकट आ चुका था...एक हाथ में खड़िया, एक हाथ में कोयला लिए...बाँहें नर्मदा के दो पाटों—सी फैलाए...उसकी आँखों में मुझे देखकर, एक अपार खुशी का सागर उमड़ आया था...काश, मैं उन पाटों में समा जाती । काश, मैं उस पवित्र खुशी के सागर में डूब जाती ।...”

“पर, मैं कार स्टार्ट कर, प्रबल वेग से आगे बढ़ गई । एक हृदय-विदारक आर्तनाद और मोटर रुकने की आवाज़ सुनकर, मैंने कार

रोकी...मेरी कार के पीछे आते-आते पागल कान्त 'बस' के नीचे आ गया था ।...

उसकी उस दर्दनाक मौत को मैं क्या भुला पाऊँगी ?

“अगर तुम जज होते, तो क्या मेरे इस गुनाह के लिए मुझे फाँसी की सजा नहीं दे सकते, करसन बाबू ?...क्या तुम यह सिद्ध नहीं कर सकते, कि पागल कान्त अपनी विक्षिप्तावस्था में कार का पीछा करते हुए नहीं दबा, बल्कि मैंने उसे कत्ल कर दिया ?...”

“पर, ऐसा कुछ नहीं हो सका ।...साधारण पूछताछ के बाद, मुझे जाने दिया गया । मैंने उसे एक बार देखना चाहा...देखूँ, उसकी आँखों में खुशी का सागर अब भी है ?...”

“पर लाश उठाई जा चुकी थी । सिर्फ़ खून के धब्बे रह गए थे... और मैं वहीं चीख उठी...खून के धब्बों से, करीब-करीब, ऐसा ही चित्र बन गया था, जैसा इस कागज़ में बना है ।...”

“कोई पुलिस वाला बोला, कि ‘ये घाबर गई हैं ।...’”

“और, मैं बाद में चली आई । कई जगह एक्सीडेंट होते-होते बचा । आखिर धोबी तालाब आकर, मैंने कार छोड़ दी और होटल में जाकर व्हिस्की पी ।...हाँ, हाँ, मैं व्हिस्की पीती हूँ । एक अर्सा हो गया । शादी से पहले तो नहीं ।...”

“घर मैं पैदल चली आई । बाद में संतसिंह को कार लाने भेज दिया ।...” —इतना कहते-कहते नर्मदाबेन थककर, चूर-चूर हो गई थी । उसने कृष्ण को सिरहाने-स्थित आलमारी खोलने को कहा । शराब की, बेशकीमती शराब की कई बोतलें वहाँ पड़ी हुई थीं । नर्मदाबेन ने एक बोतल लाने का इशारा किया । खुद वहाँ गिलास उठा लाई, जिसमें अभी-अभी कृष्ण ने पानी पिया था । और, बोतल के मुँह पर रखी ‘पेग’ अलग फेंककर, उसी गिलास में शराब ढालकर पी गई ।...

“मेरी पूरी कहानी सुन के ही जाना अब, करसन बाबू !”

और उसने फिर अपनी बाँहें कृष्ण के गले में डाल दीं—“क...
र...स...न...बा...”

उसके होंठों से चूकर, शराब कृष्ण के गालों को छूती बह गई ।...

७

“काय, पंडित महाराज !...केले घेऊन जावा कीं ?”

कृष्ण को, चलते-चलते, ठिठक जाना पड़ा ।

“दोन आणेला तीन वाली केलें ध्या...फार-चांगले आहेत ।...
किती पाहिजेत ?” केलेवाली ने केलों की घड़ी कृष्ण के सामने कर
दी । उसने इतना तो बम्बई रहते जान ही लिया था, यह मराठन है ।
‘श्री कृष्ण पुरी हाउस’ में अधिकतर नौकर मराठी थे, सो उनके साह-
चर्य में मराठी तो कुछ-कुछ समझने भी लगा था ।

“फकत दोन-दोन...” केले खाने की कोई इच्छा न थी, फिर भी
माँग बैठा—“ज्यास्ती काय करेगा ? एकच मारगूस है हम !”

केले वाली उसकी अनगढ़ मराठी बोली पर हँस पड़ी—“क्या हो,
पंडित महाराज ? तुमरे को मराठी नहीं आता ना ? फिर कोण हो
तुम ?...फकत दोणच केलों से क्या करेगा ? घर ऊपर बाल-बच्चा

१. क्यों, पंडित महाराज ! केले ले जाइए ना ?

२. दो आने के तीन वाले केले लीजिए, बहुत स्वादिष्ट हैं । कितने केले
लीजिएगा ?

लोग....” और वह शरमा गई ।...

कृष्ण को याद आया—होटल में उसकी बदली के आर्डरवाले ने एक दिन बताया था—“भैया जी, इस मुंबई शहर की कुछ वार्ता ही नको पूछो । यहाँ संत तुकाराम की, ज्ञानेश्वर चोपडी के पाना में फ्राई मुर्गी-कबाब बिकता है । रामायन-महाभारत की चोपड़ियों के पाना ऊपर रगड़ा-दहीबड़ा !...बगैर वस्तरे का हजामत और बगैर तूफान का कयामत येच शहर में होता है ।...वो केलेवाली से अपन केला लिया था ना ?...उस केलेवाली बाई का नकरोँ में गरेम मसाला देखा ? ऐसेच जवानी का सिनेमा दिखाकर, ये लोग चारआणा डभन (दर्जन) के केलीं दहा आणा (दश आने) डभन का हिसाब से बेचता है ।...केले का दाम अलग, नकरोँ का दाम अलग ।...”

और वह एक बेतुकी-हँसी हँस दिया था ! हमेशा मराठी-मिश्रित हिन्दुस्तानी वह बोला करता था । (यों भी बम्बई की खास अपनी एक हिन्दुस्तानी है—जो खड़ी बोली और उर्दू की शैली में बोली जाती है, पर उसमें मराठी-गुजराती से लेकर, पंजाबी, बंगाली, फ़ारसी, तामिल-तेलगू और ठेठ मैथिली-अवधी के शब्द भी रहते हैं । बात यह है, कि बम्बई में जब कोई मद्रासी या बंगाली हिन्दी बोलने लगता है, तब वह, बीच-बीच में, एकाध अपने-अपने शब्द भी लगाता जाता है । ऐसा ही मराठी-गुजराती और तेलगू-भाषी भी करते हैं । इस तरह बम्बई की आम भाषा की अपनी खासियत है । न्यूनाधिक, इस शहर में ही नहीं, पूरे बम्बई राज्य-भर में हिन्दी का यही ‘बम्बईया-रूप’ प्रचलित है ।...)

उसकी बातें याद आने से, कृष्ण को उस केलेवाली पर एक हँसी-सी आ गई—तो, यह भी केलों के साथ नखरों के दाम जोड़ती है ? और गौर से देखने पर लगा, वस्त्र भले ही एकदम सादे और साधारण हैं, पर उसका अंग-सौष्ठव, उसका सौन्दर्य एकदम साधारण नहीं ।

“क्या देखता है, पंडित जी...?”

“तुम्हारी भाग्य-रेखा देखता हूँ...” एकाएक टोके जाने पर, कृष्ण ने कह दिया ।

“हस्त-रेखा पाहणार ज्योतिषी आहते कां तुम्हीं ?” वह खिल-खिला उठी—“क्या-क्या लिखेला है मेरे हाथ ऊपर ?...” और उसने अपना हाथ कृष्ण के आगे कर दिया...

“केम, बाई ? केला शुं भाव ?” पान की पीक को बच्चों की बन्दूक की गोली की तरह फेंकते हुए किसी ने पूछा । केलेवाली ने सिर उठाकर देखा, तो वह एक वहशी हँसी हँस दिया—“शुं भाव छे ?”

“किसका भाव पूछता, रे ? मेरा, या केले का ? चौपाटी का केलेवाली समझा क्या ? घर ऊपर अपनी माँ-बहन का भाव पूछ जाके ! ...‘शुं भाव छे ?’...हलकट...” केलेवाली की आँखों में एक अजीब घृणा का भाव उभर आया था । कुछ संयत होने पर, वह फिर हँस पड़ी—जैसे कुछ हुआ ही न हो ।

हाथ आगे बढ़ाती, बोली—“हम गरीब लोग की इज्जत को भी लोग केला ही समझते हैं !...भाव पूछते फिरते हैं । बिच्चू-सरीखा डंक मारते हैं । समझते हैं, केलेवाली केले बेचने के लिए हँसती है, तो जैसे अपनी इज्जत की भी ‘विजनिस्’ करने को देखती है ।...थू...”, क्या हलकट लोग...गरीबों की माँ-बहन लोग को कमाठीपुरा की रंडी समझते हैं ।...”

कृष्ण कुछ सहम-सा गया । उसे दोस्त की तहरीर भूटी लगी । शायद, कुछ केलेवालियाँ चरित्रहीन होती भी हों ? पर, सभी तो नहीं । यह केलेवाली एक तेज शिकारी विल्ली-सी लगी उसको । बिगड़ उठे, तो किसी को भी नोंच ले । गुस्सा करते समय वह ऐसी लग रही थी, जैसे काँटों वाला फूल । फूल की सुरक्षा के लिए काँटे हैं और नारी की

सुरक्षा उसके रग-चंडी-से प्रखर-प्रचंड स्वभाव से ही हो सकता है !...

कृष्ण ने उसका हाथ छोड़ दिया ।

बोला—“मैं तो मुँह की रेखाएँ देखने वाला ज्योतिषी हूँ, बाई !...”

“मुँह की रेखा तुम क्या देखेगा, पंडित ? अभी तो खुद तुमेरा मुँह बच्चा-सरीखा है !”...केलेवाली हँस पड़ी—“हाथ देखो, हाथ ! हाथ में क्या लिखेला है...” और उसने अपनी गोरी-चिट्ठी हथेली फैला दी ।

उस गौर-प्रशस्त हथेली को देखते-देखते, कृष्ण को लगा वह सच-मुच ज्योतिषी है । उसे अपने माथे पर लम्बा तिलक, सिर पर बड़ा साफा महसूस हुआ । उसे प्रत्यक्ष लगा, ऐसी उजली-चौड़ी हथेली उसने शायद ही कहीं देखी हो ? ऐसी हथेली वाली को तो वैभव की स्वामिनी होना चाहिए ?

तब उसे सहसा नर्मदाबेन की याद आई—ठीक इतनी ही उजली—चौड़ी हथेलियाँ हैं उनकी । कहीं कोई शिकन, कोई फूटी रेखा नहीं । उसका शरीर सिहर उठा । उसने केलेवाली का हाथ भटक दिया । माथे का तिलक पोंछने के लिए, तेजी से माथे पर हाथ फेरकर, सिर के बालों को भटक दिया ।...

“कोई बुरा बात देखा, पंडित ?” हाथ भटक देने से केलेवाली का मुँह उतर गया । पर, कृष्ण चलने लगा । एकाएक ही, ये आत्मा को मथ देने वाली घटनाएँ क्यों होती जा रही हैं ? जीवन में गिरने-सँभलने की प्रक्रियाएँ इतनी तेजी से क्यों हो रही हैं ? और उसे केलेवाली के शब्द याद आए, कि ‘मुँह की रेखाएँ तुम क्या देखोगे, पंडित ? अभी तो तुम्हारा मुँह ही बच्चे-जैसा है ।’...और वह हँसकर, लौट पड़ा ।...

केलेवाली वही थी, जो कल रात देसाई-भुवन में केले लेकर आई थी और जिसे सुबह कार की खिड़की से देखा था, और जो आँख मिलते ही मुस्कुरा उठी थी ।...

कृष्ण ने देखा, इस बार वह, सिर झुकाए, डलिया में पड़े केलों को

नाखूनों से विदीर्ण कर रही थी ।...

“बाई, दो आने के तीन वाले केले देना ।” उसने शान्त स्वर में कहा, जैसे अभी-अभी केले लेने आया हो । केलेवाली ने सिर ऊपर उठाया । उसकी बरौनियाँ गीली-गीली लग रही थीं, जैसे कुएँ से भरकर तत्काल निकाली गई गगरी की बाहरी गोलाई से पानी नितरने जा रहा हो ।

उसने जल्दी से आँखें पोंछीं । केले की एक घड़ी ही देती बोली — “लो...”

“इतने में क्या करूँगा ? इतने पैसे भी तो...”

“पैसा रहने दो...किधर भी रामायन की कथा करोगे, तो सीता-राम को चढ़ा देना । अपन कथा सुनने को आऊँगी ।...” और जैसे गागर अन्दर से छलक पड़ी ।...

कृष्ण क्या कहे ? क्या करे ? अब तक उसने कहानियों में ही पढ़ा-लिखा था, कि औरत एक अबूझ-पहेली होती है । ऐसा ही वह पढ़ता आया था, ऐसा ही लिखता गया था । पर, प्रत्यक्ष-अनुभूति और परोक्ष पठन-लेखन में कितना अंतर है ? जीवन में अनुभवों को इतना महत्व, शायद, इसीलिए अधिक दिया करता है प्रत्येक साहित्यकार ?

पर, उसकी माँ उसके लिए कभी पहेली नहीं बनी ? बहन ने कभी उसे यों उद्वेलित नहीं किया ? यहाँ तक, कि गाँव-शहर की आजतक देखी हजारों औरतों में से किसी ने उसको नहीं उलझाया ?...तब नर्मदाबेन ने क्यों उसे उलझा दिया ? यह केले वाली क्यों उसे उलझा रही है ?...इस उलझने की पृष्ठभूमि कहीं उसी के हाथों तो तैयार नहीं हुई है ?...

यदि वह उस दिन गुरखा के कहने पर, गली में प्रविष्ट होते-होते, वापस न मुड़ता, नर्मदाबेन के पास न जाता...यदि वह उसकी करुणा मनोदशा और उद्भ्रान्त-सी हरकतों को ठुकराकर चला आता,...यदि वह सवेरे कार से मुंह निकालकर, केले वाली को न देखता...यदि, वह

उस बार केले लेकर सीधे चल देता यों न कहता—‘तुम्हारी भाग्य रेखा देख रहा हूँ ?’...

कभी-कभी एक छोटा-सा वाक्य एक वातावरण तैयार कर देता है। जिसमें उलझ जाना पड़ता है, अटकना पड़ता है। इस उलझाव-अटकाव में लेकिन कशिश कितनी होती है, बंधाव कितना होता है ? कौन एकदम सुलभ जाना, एकदम मुक्त होकर चल देना पसन्द करता है ?...

कृष्ण ने महसूस किया, सोचने के लिए उसके पास बहुत-कुछ है कहने के लिए कुछ भी नहीं। वह निरीह-भाव से केले वाली को देखता ही रहा।

“चलो, पण्डित ! अपन होटल में अधि-अधि कप चा पिएँगे ।... केले की डलिया को कपड़े से ढाँपकर, उसने वहीं छोड़ दिया और सामने ‘महालक्ष्मी विश्रांतिगृह’ की ओर बढ़ी। कृष्ण उसके साहस से चकित रह गया। उसके चाय पीने के आमन्त्रण से, उसे एक फुरहरी सी हो आई। इस उन्मुक्त व्यवहार के पीछे या मन की कलुषता, या हृदय की पवित्रता का आग्रह-आवेग अवश्य होना चाहिए... कृष्ण ने फिर केले वाली की ओर देखा, कहीं कोई चरित्र-हीनता का लक्षण, कामुकता का चिह्न नहीं था, उसकी उजली-सँवरी देह-यष्टि तो ऐसी लगती थी, जैसे किसी संन्यस्त कलाकार ने संगमरमर की एक निष्कलंक मूर्ति तैयार कर, उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कर दी हो।...”

“बैठो, पंडित...” खाली कुर्सी को अपनी धोती के छोर से पोंछती, केले वाली बोली।

दोपहर का समय था। भीड़ अधिक न थी। कोने की एकान्त कुर्सियों पर दोनों बैठ गये।

“काय आगू ? बटाटा बड़ा, भजीया, समोसा, कचोरी, ऊसल, पाव, सुकी भाजी, सीरा, राइस प्लेट, सोडा, लेमन...”

होटल के सारे ‘मेनू’ की जैसे उसके मुँह में ‘टेप-रेकार्डिंग’ कर दी

गई थी, कि ग्राहक आए नहीं, रिकार्ड बजना शुरू हो गया ।...

केले वाली हँस पड़ी । आर्डर वाले ने होंठों में दबी सुर्ती को जीभ से इधर-उधर चलाया और, बाँए कंधे का गीला भाड़न दाँए कंधे पर रखता हुआ, बोला—“कसा काय...”^१

“बरी आहे...चा आणा एक कोप ।^२...” केले वाली उसकी परिचिता थी । कृष्ण को एक मितली-सी आने लगी । कुछ औरतें इतनी धुरीहीन क्यों होती हैं ?

पर, केले वाली उसकी तरह मननशील नहीं थी । वह जैसे शंकाओं-चिन्ताओं से एकदम परे थी । आर्डर वाले ने चाय का कप टैबिल पर रख दिया ।

“एक बसी (प्लेट) और लाओ ना ?”...इस बार केले वाली ने हिन्दी में ही कहा ।

“कदी अमाला परण पाजा कीं तुमची ‘स्पेशल चहा’^३...” और आर्डर वाले के मुँह से लार टपक कर, केले वाली के कन्धे पर गिर गई ।

“मसखरी करतो काय...?”^४ केले वाली ने चटाक से एक चाँटा जड़ दिया उसके मुँह पर—“ज्यास्ती बड़बड़ करेगा, गल्ले पर सेठ को बोलेगा ।...”

“केम, सदा शिव !...शुं थयूँ ?” गल्ले पर से मालिक की आवाज आई ।

“कई नहिं, सेठ !” कहता हुआ, सदाशिव खाली प्लेट लाने चला गया । केले वाली ने आधी कप चाय से अधिक प्लेट में ढाली और

१. कंसी हो ?...

२. अच्छी हूँ । एक कप चाय देना ।

३. कभी-कभी तुम्हारी स्पेशियल चाय मुझे भी पिलाया करो ना ?

४. मजाक करता है क्या ?

कृष्ण को देती बोली—“प्या, पंडित !”

कृष्ण ने चुपचाप चाय पीली। सदाशिव अभी दूसरी प्लेट नहीं लाया था। केले वाली ने कृष्ण की जूठी प्लेट में ही शेष चाय ढाली और पीने के बाद बोली—“तुम पंडित होके भी दारू (शराब) पीते हो ?...”

कृष्ण के सिर पर जैसे किसी ने डंडा मार दिया हो...वह केले वाली की ओर कातर-दृष्टि से देखने लगा। उसकी आँखों में एक तस्वीर उभर आई...नर्मदाबेन की बाँहें उसके गले में पड़ी हुई हैं और होंठों से नितर-नितर कर, शराब कृष्ण के कपोलों-होंठों को छूती बहरही है।...

“दारू पीना अच्छा नहीं। अच्छे लोग का काम नहीं, पंडित !...” केले वाली बोली—“हमारा धनी (पति) भी बहुत दारू पीता होता। मुरारजी मिल ऊपर बुनकर होता। महीने का दो सौ रुपया पगार लाता होता। पण, हमारे को कभी एक अच्छा धोती, ब्लाउज भी लाके नहीं दिया। सारा रुपया उस्मान दादा की भट्टी ऊपर, दारू पी-पीकर उड़ाता होता। घर-खरच को फक्त चालीस रुपया देता होता। अपन उतने मेंच गुजर चलाता। सास-ससुर और हम दो जना...तभी हमको केला बेचने का धन्धा करना पड़ा। शादी बनाए के सिर्फ चार महीना पीछूँ। सास और हम दोनों बेचती होती।...पण, फिर भी, धनी सिर पर होने से हम खुशी से धन्धा करती होती। अभी तो मजबूरी से केले बेचती, पंडित !”

और उसकी आँखों से आँसू चू पड़े।

“क्यों तुम्हारे पति अब भी शराब पीते हैं क्या ? तुम तो उससे

मराठी लहजे की हिन्दी में...था-थी के लिए होता-होती ओर ही के लिए च और पीछे के लिए पीछूँ, ‘मेरे-तुम्हारे’ के लिए हमारे-तुम्हारे प्रयुक्त होता है। वैसे बम्बइया हिन्दी में सभी अहिन्दी-भाषी प्रायः ऐसे ही शब्द-प्रयोग करते हैं।

नफरत करती होगी ?...और अब मुझसे भी करोगी ?...”

“तभी हाथ देखते-देखते तुम छोड़ दिया ना ? अपन समझा, तुम सच्चा ज्योतिषी है !...पर तुम तो आदमी भी कच्चा, ज्योतिषी भी झूठा है, पंडित !...अरे, धनी होता, तो क्या हलकट गिराक लोग केले का भाव छोड़के, हमेरा भाव पूछते ?—” केले वाली ने अपनी कुहनियाँ टेबिल पर टेक दीं—“अरे, लाख बुरा होता । दार पीता होता, जुगाड़ (जुआ) खेलता होता । सट्टे का आँकड़ा लगाता होता । परा दिलदार मरद होता । जभी वो गिराक हमारा भाव पूछा...जभी ये सदाशिव हलकट हमरे साथ टिंगल किया...तुमेरे चेहरे का रंगत भी नहीं बदला, पंडित !...वो होता, तो छुरा भोंक देता । मजाल क्या, कोई मेरे ऊपर बुरी निगा (निगाह) डाल देवे ।...नजर डालने वाले का कलेझा चीर के पी जावे ।...कैसा दिलदार मरद होता ! कितना जान देता होता हम पर ।...” और उसने अपना माथा भी टेबिल पर टेक दिया ।...

कृष्ण को लगा, जैसे किसी ने उसके मुँह पर जोर का तमाचा जड़ दिया हो ? ओह, औरत के कितने रूप उसके सामने आ रहे थे ? तक-दीर कोई बहुत बड़ा खेल तो उसके साथ नहीं खेल रही ? किसी शतरंज की बाजी के हाथी के करीब का प्यादा तो नहीं वह ?...

केले वाली उठी, दो कप चाय लाने का आर्डर देकर सामने के ‘फेमिली केबिन’ में चली गई—“आओ, पंडित...”

कृष्ण की नाक में तो जैसे नकेल पड़ी हो । केबिन की कुर्सियों पर बैठते हुए दोनों की आँखें एक-दूसरे से मिलीं । एक की आँखों में कहने ...न-जाने कितना-कुछ कह लेने की व्यग्रता थी । और दूसरे की आँखों में जिज्ञासा और कौतूहल का सर्प, एक अजीब अन्तर्द्वन्द्व और अनुभूति की मणि सिर पर धरे, कुंडली मारे बैठा था ।...

सदाशिव चाय रख गया, चुसचाप । केले वाली ने सिर उठाकर, उसे देखा और मुस्कुरा दी—“मरद-मरद में भी कितना फरक होता है ?...बेचारे को लाफा मार दिया, तो चेहरा उतर गया । अपन इधर

रोज आती है चा पीने को। इसको भाई-सरीखा समझ के हँसती—बोलती होती। मगर इसकी नजर खराब हो गई है।...

उसने कृष्ण की ओर चाय का कप बढ़ाया, तो वह सहम गया—कहीं उसकी आँखों में कोई खराब नजर न दिख जाए उसे ?...

“अभी तुम दारू पीने वाले से नफरत की बात बोले थे न, पंडित ? इसलिए अपन अभी अलग-अलग कोप चा का मँगाया। दारू पीने वाले से तो अपन नफरतच करती है।...” और वह हँस दी—“पर, तुमरे से अपन क्या नफरत करे, पंडित ? तुम तो अपना पाहुना-(अतिथि) सरीखा है।...इतना दिन किधर था तुम ? किधर था हम ? कौन किसको जानता था ? ...कल से तुमको देखा...आता कल को न मालुम तुम किधर चला जाएगा ?...फिर नफरत क्या करे ? तुम गाली देगा, पंडित--मराठी औरत लोग को बदनाम करेगा...क्यों ?”

उसकी आँखें फिर सजल हो आई—“नफरत करना तो उससे, जिससे मोहब्बत होवे। मोहब्बत के बिना नफरत का क्या कीमत ? हम अपना धनी रामराव से नफरत करता होता, तो सिर्फ़ इसीलिए कि हम उससे मोहब्बत करता होता। दुनिया में कितना लोग दारू पीता है, जुगाड़-सट्टा खेलता है।...कितने को हम रोका, कितने से हम नफरत किया ?...अपने धनी से नफरत करता था, इसलिए कि वह हमेरा था। और अपनी चीज़ का खराब होना किसको अच्छा लगेगा ?...”

कृष्ण को वह प्रश्नवती-आँखों से देखने लगी।

‘अपने पति को—रामराव को तुम बहुत प्यार करती हो ना ? हर औरत अपने पति को...’

“औरत तो दरेक प्यार करती है, पंडित !”...वह बीच में ही बोल उठी—“पर, मरद लोग औरत के प्यार को समझते किधर हैं ?...औरत तो माँ होवे, बहन होवे, जोरू होवे...वह तो मरद को प्यारच करती है।...है न, पंडित ?...”

इस बार उसकी प्रश्नवती—आँखें और सुन्दर लगीं कृष्ण को। सच औरत कितना प्यार करती है पुरुष को ? कितना असीम...कभी सही दिशा में, कभी गलत दिशा में...

“तुमेरा बायकोन (पत्नी) तुमसे नफ़रत नहीं करता, पंडित ? तुम भी तो कथा बाँच के सारा परसादी दारू पीने में ही उड़ा देता होगा ? भगवान की कथा बाँच के, दारू पीते हुए पाप नहीं लगता तुमरे को, पंडित ?...”केलेवाली प्रश्न-पर-प्रश्न करती चली गई।

कृष्ण सहसा कुछ भी उत्तर न दे सका।

केलेवाली हँस पड़ी—“माफ़ करना, पंडित ! तुम सोचता होगा... हमेरी घर की बाई भी हमसे इतना नहीं पूछती, इतना नफ़रत नहीं करती ?...कभी-कभी ऐसा होता है, पंडित !...कैसा अपना, और कैसा पराया...तुमको कल देखा...सुबू देखा...अभी देखा...तुमसे वार्ता करने को, तुमसे अपनी गोष्ठी (कथा) कहने को मन हो गया। दरबखत अपन मन को, जबान को रोकता रहा...पर, ऐसा लगा...बिना बात किए हमको कल नहीं पड़ेगा।...सिर भारी लगता था। आक्खा (पूरा) जिसम भारी लगता था। तुमसे बात किया, तो करता रहा।...किसी का भी खयाल नहीं किया।...हमेरे को माफ़ करना, पंडित !...नाराज़ मत होना। पण, देखो, दारू मत पीना। हमेरे को बहन...”

“मेरी शादी नहीं हुई अभी...और मैं शराब-वराब भी नहीं पीता बाई...”। कृष्ण सहसा बोल उठा। तब उसे याद आया, जब उसने कहना चाहा था, कि ‘आपको देखकर माँ...’ तो...तो...नर्मदाबेन, बीच ही में, जोर से चीख उठी थी।...केलेवाली को वाक्य क्यों पूरा नहीं करने दिया उसने ? क्यों ऐसा चाहा उसने, कि वह उसे बहन न कहे ?...उसकी नज़र में भी, शायद, कहीं कोई खराबी आ गई है ?...

और वह फेमिली-केबिन से बाहर निकल आया। काउण्टर पर जाके, उसने चाय के पैसे दिए—तीन आने। और धीरे-धीरे चला

गया ।...

“सहा आणे । गेरुवा कुर्ती, सहा आणे”...सदाशिव । ने आवाज दी ।

“ए तो ब्रणज आना आपी गयो छे...जर्रा बुलाव तो सही...”-
सेठ बोला गल्ले पर से ।

“रहने दो, सेठ !...तीन आना हम देता है । दो चालू चा समझ के तीन कोप का तीन आना दे गया होगा ।...” और केलेवाली ने अठन्नी काउण्टर पर रख दी--“गेरुवा कुर्ते वाला बाबू तुमको जो तीन आना दे गया है, उसको अपने दानखाते की गऊशाला की पेटो ऊपर डाल देना । चा के सहा आणे हमेरी अठन्नी में से ले लो...”

८

कारखाने पर आकर, कृष्ण अनखाए ही अपनी छोटी-सी खाट पर लेट रहा । दोपहर को घंटे-दो घंटे सोने का उसे अभ्यास-सा पड़ गया है । आज नहीं सो पाया, तो हल्का सिर-दर्द-सा अनुभव होता है । पर, शायद नहीं । न सो पाना, अक्सर होता रहता है । सिर-दर्द कभी नहीं हुआ । आज अनुभव-हीन जीवन के केवल तेरह-चौदह घंटों की अप्रत्याशित अनुभूतियों ने उसे अंतर्मन्थन और मनःसंघर्ष की तुर्यका पर जो ला पटका है—उससे चित्त अशान्त है । सिर दुखता है ।...

“भैया जी”...किसी ने आवाज दी--“चलो दुकान पर ।”...

कृष्ण ने सिर उठाकर, देखा होटल के मालिक उठा रहे थे ।

कृष्ण उठ बैठा ।

“तबीयत बरोबर नहीं है क्या ?” सेठ ने पूछा ।

“सिर-दर्द हो गया है कुछ...ठीक हो जायगा...”

“नहीं, नहीं । तुम आराम करो । आज एक नया आर्डरवाला आया है । उसका ट्राई लेने का है ।” सेठ बोले—“उसका आवाज़-हिसाब बरोबर होगा, तो तुमको ‘नाज’ सिनेमा वाले होटल पर भेज देगा ।...”

कृष्ण फिर विचारों में खो गया । तभी फिर सेठ की आवाज सुनाई पड़ी—“और भैया जी, दुकान ऊपर तुम्हारे नाम का एक चौपड़ी और चिट्ठी पोस्टमैन दे गया है ।...किमी के हाथ भिजवा देगा, तुम आराम करो ।...”

सेठ चले गए । इतने में रसोइया आया । बंगाली बाबू सब कहा करते हैं उसे । जागृतावस्था में, वातचीत और खाने-पीने के समय के अलावा, हर समय कुछ-न-कुछ गाता रहता है । आवाज़ बहुत अच्छी है । पर, दिन-भर जो गाता रहता है, तो बेचारा समोसा बनाने वाला कारीगर, बुड्ढा अच्छेलाल कह दिया करता है—“बंगाली बाबू, बेटा, तुम तो फिल्म लाइन में भी चला जायगा, तो मोहम्मद रफी और हेमंतकुमार की नींद तो हराम ही हो जाएगी ।...”

रसोइया बोला—“किसना भाई, आज भोजन नहीं करेगा क्या ?” कृष्ण ने सिर हिला दिया । इतने में एक दूसरा नौकर लिफाफा और ‘सरिता’ दे गया । कृष्ण ने ‘सरिता’ को तेजी से खोला, और अपने गीत को बार-बार पढ़ने लगा ।

बंगाली बाबू बोला—“किसना भाई, तुम गाना लिखता है ना ? हमको भी कुछ गाना लिखके दो । एकदम मीठा-मीठा । रौंगीला-रौंगीला सरीखा...अपना एक चक्रवर्ती ब्रादर फिल्मस्तान में टाइपिस्ट है । उसने हमसे बोला है, ‘फिल्मस्तान’ का फाटक ऊपर कोई बड़िया-बड़िया गाना सुनाओ, जिस टाइम कोई म्यूज़िक-डीरेक्टर बाहर निकल रहा हो ।...इशारा हम कर देगा ।...’क्यों, किसना बाबू ? देगा

हमको गाना....”

“कविता समझते हो भी, बंगाली बाबू ?” कृष्ण ने प्रश्न किया।

“कोबिता ?...कोबिता क्यों नहीं समझेगा। रबीनबाबू का कितना कोबिता हमको याद है।...सुनाओ न, कैसा कोबिता है ?”

“सुनो, इसी पत्रिका में छपा है। ‘किसी अनगढ़े मोती-सा मन...’, किस खोखली सीपी-सा तन’....”

“ये भी कोई कोबिता है ? कोबिता तुमको हम सुनाएगा...रबीन बाबू का....” कहते हुए, बंगाली बाबू ने कृष्ण के हाथ से ‘सरिता’ छीनने का प्रयास किया, कि कृष्ण की कविता वाला पन्ना चर्र से फटकर टुकड़ों में बँट गया। जैसे कृष्ण का हृदय ही फट गया हो। उसने बंगाली बाबू को धक्का देकर खाट से नीचे फेंक दिया—“हरामी बंगाली।....”

“हरामी तुम, बनारस का भैया लोग....” बंगाली जमीन से उठकर कृष्ण से लिपट गया। दोनों में गुत्थागुत्थी हो गई। भगड़ा औरों ने आके निबटाया। कृष्ण की दाँई आँख के ऊपर नाखून लग जाने से घाव हो गया था, जैसे छुरी से चीरा हो। कुछ पीड़ा, कुछ कुंठा और कुछ क्रोध-वश वह बोला—“हरामी बंगाली...ख्वाब देख, मोहम्मद रफी, तलत महमूद बनने का और यहाँ पुरी हाउस में खनसामागिरी करता जा। तेरे से अच्छा हेमंत कुमार का कुता भूँकता होगा....”

“और तू भैया, फुकट खवैया कौन-सा कदू में तीर मार लेगा ?....” बंगाली बाबू फिर उबल पड़ा—“कोबिता करेगा ? कभी तेरे बाप ने भी किया था कोबिता ?...तुझसे बड़िया कोबिता हमारा बंगाल का बूट पालिश वाला करेगा।....”

×

×

×

आँख के ऊपरी हिस्से में प्लास्टर लगाकर, कृष्ण फिर खाट पर लेट गया। उसका मानसिक-संतुलन ही जैसे खो गया था। वह अपने को बहुत अस्थिर, असंयत महसूस कर रहा था, जैसे वह कुछ गलतियाँ

कर बैठा हो, जैसे उससे कुछ गलत व्यवहार किया गया हो।

बंगाली बाबू की बात को लेकर, उसने सोचा—कितने निचले स्तर पर आके उसने भगड़ा किया है? वह पढ़ा-लिखा है, फिर भी एक अपढ़ से अभद्रता-पूर्ण बातें कहता रहा...तब वह, क्यों न कहता?...

उसने तय पाया, उत्तेजना या प्यार के विशेष-क्षणों में हर कोई सिर्फ एक साधारण आदमी रह जाता है। वह पढ़ा-लिखा हो, अपढ़ हो। अमीर हो, गरीब हो। क्रोध और उत्तेजना में वह अपनी मान-सिक-स्थिति को सामने वाले से ज्यादा, कम-से-कम बहुत ज्यादा, ऊँची तो नहीं ही रख सकता।

उत्तेजित होने पर ही, मनुष्य का सही स्वरूप सामने आता है। फिर उत्तेजना प्यार के सिलसिले में हो, या भगड़े के।...

उसे नर्मदाबेन की याद आई। केलेवाली की याद आई। उत्तेजना के क्षणों में कितना खुलकर पेश आई हैं दोनों? और वह भी तो उत्तेजित होकर ही चला आया था...और न जाने वह केलेवाली क्या सोचती हो? उसे बुरा न लगा होगा, कृष्ण का एकाएक चले आना? यह तो असभ्यों की तरह उठकर चला आया है, जैसे केलेवाली ने उसके मुँह पर भी थप्पड़ मारा हो?...

आज बहुत व्यग्र हो उठा है कृष्ण !

जीवन में पहली बार, इसी वर्ष, रोजी-रोटी का सवाल उठने पर, एकाएक व्यग्र और असंतुलित हो उठा था वह। फिर, बात पुरानी पड़ गई। संतोषजनक-हल न मिलने पर भी, होटल की ही नौकरी सही, जीविका का प्रश्न विकट रूप में सामने अभी नहीं है। एक आधार मिल गया है। प्रगति के लिए-अभी स्वप्न शेष हैं, पूर्ति-प्रयास शेष हैं।...

और आज, पहली बार, जो औरत को लेकर उसके जीवन में यह अप्रत्याशित और आकस्मिक उथल-पुथल मची है, क्या उसका भी वह धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाएगा?...क्या इतनी तीव्र और मनोवेधक-अनुभू-

तियाँ भी एक दिन सहज-स्वाभाविक ढाँचा अख्तियार कर लेंगी ?...

औरत के बारे में कुछ जानता ही न हो, ऐसी बात तो नहीं। उस के साहचर्य की कामनाएँ ही नहीं, उसको अपने निकट... एकदम निकट पाने के स्वप्न ही न देखे जाते हों, ऐसा भी नहीं। इतना अवश्य है, औरत की इतनी मुखर-उन्मुक्त संगति उसे जीवन में पहली बार मिली है—तभी न वह एकदम अटपटा-सा गया है, जैसे नया-नया जुआरी या चोर पेशेवर बनने से पहले घबड़ा उठता है!...

उसे याद आया, आज वह नर्मदाबेन को वचन दे आया था—रोज उनके यहाँ आया करेगा। बिना नौकरी किए, रुपए न लेने हों, तो उन्हें हिन्दी पढ़ा दिया करे। यों वो हिन्दी जानती हैं, पर कविताएँ पढ़ा दिया करे, कथाएँ सुना दिया करे। कुछ भी करे, कुछ समय अपना अवश्य दे।

कुछ शान्त होने पर नर्मदाबेन ने कहा था, कि अभी वह कृष्ण के बारे में कोई निश्चित रूप-रेखा नहीं बना पाई है, कि वह कृष्ण को क्या मानकर चलेगी ? अपनी मानसिक-विकृति उसने व्यक्त कर दी थी। अपने जीवन का व्यभिचरित-व्यतीत भी नहीं छुपाया था। पर, अभी-फिलहाल कृष्ण के प्रति कोई अदम्य वासनामूलक-आकर्षण उसे नहीं। एक आकर्षण, एक आत्मीयता उसने अवश्य महसूस की सो, कृष्ण वहाँ आया करे... उसकी संतप्त-आत्मा को राहत मिल जाएगी। उसके जीवन की विकृतियों का दंशन कम हो जाएगा। कृष्ण को वह एक साथी के रूप में देखेगी। जो उसकी पीर बहला सके। जो उसके उद्भ्रांत-जीवन को एक संतुलन दे सके। इस मर्यादा-रेखा का उल्लंघन जब हो, चाहे तो, कृष्ण स्वीकार कर ले—या, अस्वीकार कर, चला जाए।...

यह एक मान्य-समझौता था। वैसे भी, कृष्ण को अपनी गरीब माँ-बहन के लिए, आर्थिक-अवलम्ब पाना ही है। सेठानी उसे चार सो रुपए महीने देगी। कल्पनातीत है उसके लिए। पर, सुखकर है।

उसने सेठानी को यह नहीं बताया था, कि वह कहीं नौकरी करता है। अपने एक सम्बन्धी के यहाँ ठहरने की बात अवश्य कही थी।...

तभी लिफाफे का ध्यान आने पर, उसने लिफाफा खोला। माँ का पत्र था। लिखा था, कि विजनौर से एक रिश्ता आया है। आनन्दी के लिए। लड़का एम० ए० है और दिल्ली के एक कालेज में उसकी नियुक्ति, हिन्दी के प्रोफेसर की हैसियत से, हो गई है। बड़ी-बड़ी जगहों से उसके लिए लड़की वालों की मिन्नतें आई हैं। दहेजों की लिस्टें आई हैं। पर, आनन्दी सुबोध की खुद की पसन्द है। कभी अपर-प्राइमरी में दोनों ने साथ-साथ पढ़ा था, जब सुबोध रायबरेली ही, अपनी बुआ के यहाँ रहता था। बाद में भी, जब-जब, सुबोध रायबरेली आता रहा—उसका आनन्दी का स्नेह-सूत्र जुड़ा रहा। वह खुद माँ से मिल गया है। दहेज के नाम पर, वह फूटी कौड़ी भी नहीं चाहता। पर, हजार-पाँच सौ रुपए खर्च तो होंगे ही? क्या जल्दी ही कुछ प्रबन्ध कर वह घर आ सकेगा? तीन महीने बाद ही, वैशाख में विवाह का निश्चय किया है, सुबोध ने।...

...और अब तो वह पाँच सौ से अधिक तीन महीने में ही बचा लेगा! कह-सुनकर, कुछ और माँग लेगा। आनन्दी भले घर, भले वर को पा ले—कृष्ण इसके लिए भीख भी माँग लेगा...यह सोचते ही, उसे आनन्दी का गले में बाँहें डाल-डाल कर, भूलना याद हो आया—“भैया राजा मेरा, रे! रुपए लाए तेरा, रे! बारह के खा डाले पान...एक में आटे की दूकान...”

‘हट पगली’...अनजाने ही कह बैठा कृष्ण और उसका मन बहुत ही रुआँसा-सा हो आया। उसने सोचा, काश! केलेवाली को उसने बहन बनने दिया होता...शायद, आनन्दी को प्यार करने का एक सहारा मिल जाता?

और कृष्ण उठ गया। आज छुट्टी तो है ही। वह केलेवाली को ढूँढेगा। उसे बहन कहेगा। न-जाने उसका नाम क्या है? उसे एत-

राज न हो, तो वह उसे आनन्दी कहा करेगा ।

×

×

×

गंगूबाई से मिलके, शाम को लौटा कृष्ण, तो और उलझा हुआ, और अनमना ।...साँप के शरीर से छोड़नी-केंचुली तो छूट नहीं पाए, उसी पर दोहरी, तिहरी केंचुलियाँ चढ़ जाएँ, तो वह कैसा अटपटापन महसूस करेगा ?

कृष्ण ने सोचा, कि इन अप्रत्याशित-अनुभवों ने यदि किसी मोड़ तक पहुँचाया...ऐसे मोड़ तक, जहाँ तक पहुँचने में तो परेशानियाँ हों ही, साथ ही, जहाँ पहुँचकर भी केवल भ्रांतियाँ और छलनाएँ ही हाथ आएँ, तो वह, बहन के विवाह के बहाने, रायबरेली पहुँचने के बाद, भले ही और कहीं चला जाए... बम्बई तो नहीं आएगा ।

इस ख्याल से, उसे राहत मिली । निर्गुणात्मक-स्थिति तक पहुँच जाने पर, मन का भार घट जाता है । जैसे गंतव्य-स्थान तक बोझ पहुँचा लेने पर, मजदूर छुटकारे की साँस लेता है ।

जब वह गंगूबाई के पास पहुँचा था, वह केले की पाटी उठाए, घर जाने की तैयारी में थी । कृष्ण ने उसे बताया, कि 'उस समय भावुकता में था, कहीं कोई बात न कह बैठूँ', इसीलिए उठकर चला आया था, कि मन शान्त होने पर, फिर तुम्हारे पास आकर माफी माँग लूँगा ।'

उसने बताया, कि दरअसल वह शराब नहीं पीता और जुगाड़-सट्टा तो वह जानता भी नहीं...। उसने देखा था, गंगूबाई के भोले आनन पर जैसे खुशी की एक पर्त चढ़ गई थी, पाउडर की हल्की-हल्की गुलाबी, 'पफ' से ठीक की हुई, तह-सी ।

और उसके मुँह से निकल पड़ा था—“ऐसाच अगर हमेरा धनी पण होता तो हम उसका खातिर...” और वह शरमा गई थी । फिर उसने बताया, कि वह तो विधवा है । शराब-जुए-सट्टे की लत राम-राव को ले ही डूबी, और वह बीमारी में घुलघुलकर चला गया ।...

रो पड़ी थी वह ।...

कृष्ण का हृदय न जाने कैसा हो आया था । यह औरत नाम की चीज़ कितनी तुनक-स्वभाव की होती है, कितनी कोमल-प्राण होती है ? जरा-जरा पर रो पड़ती है ।...यों ही नहीं, अपने लिए नहीं, अपनी पीर में नहीं । वह तो पुरुष के लिए, पुरुष की याद में और पुरुष के सामने रो पड़ती है ।...

नारी और नदी का यह कैसा स्वभाव है, कि एक पथ-भ्रष्ट पुरुष की स्मृति में भी आत्मीयता के सौ-सौ आँसू रो देती है, निष्ठुर मन वाले तन को भी युग-युगों तक आत्मस्थ किए रहना चाहती है—और दूसरी जहाँ बड़ी-बड़ी चट्टानें हों, जहाँ बड़े-बड़े पत्थर हों, वहाँ और हहराती-हहराती और उनसे केलि-किल्लोल करती बहती है ।...

तो क्या यही नारी पुरुष से श्रेष्ठ है ?

अपने मन को टटोलने लगा कृष्ण, तो उसने पाया वह अपनी माँ को, बहन को अपने से कुछ ऊँचा दर्जा देता है । उनसे प्यार ही नहीं, श्रद्धा भी है ।...तो, इस गंगूबाई से क्यों नहीं ?...उस नर्मदाबेन से क्यों नहीं ? क्या उसकी मनःसत्ता में इनके लिए कोई दर्जा नहीं ? कोई अडिग भावभूमि नहीं ?...है, तो, ऊँची या नीची ?...उथली-परती या उर्वरा ?...

और कृष्ण घबरा उठता है । कितनी अज्ञेय है नारी ? ना, सिर्फ अज्ञेय ही नहीं, सिर्फ अज्ञेय ही वह होती, तो इस युग में प्रयोगशालाओं में पहुँचा दी जाती ।...पर, वह तो एक सुघर-स्पष्ट तस्वीर होते हुए भी, कहीं अस्पष्ट है, तो यह उसकी अपनी आत्म-निष्ठा, अपनी भाव-भूमि है । पुरुष के लिए तो वह उतनी भी बहुत है, जितनी-जैसी वह यथार्थ में दृष्टिगोचर होती है ।...

तो क्या, नर्मदाबेन के यथार्थ-स्वरूप और व्यक्त भाव-भूमि और आत्मनिष्ठा के आधार पर ही, उसके प्रति अपना दृष्टिकोण निश्चित कर, अलग हो जाए ?...या, सिर्फ अर्थ-लाभ की संकीर्ण मनोवृत्ति लिए,

उसे बहलाता रहे ?...

और तब उसे इस गंगूबाई से भी अधिक लगाव क्यों हो ? गंगूबाई को बहुत-कुछ भी कहना था, तो कह चुकी वह। उसे भी गंगूबाई का परिचय पूरा-पूरा मिल गया, कि जीवन-इतिहास उसका इतना-सा है। और, नाम उसका गंगूबाई है, अपनी बुढ़िया माँ के साथ खोली नं० पंधरा (पंद्रह) मकन जी, वमन जी की चाल, भुलेस्वर, बम्बई नं० २, में रहती है। और उदर-पूर्ति के लिए, केले बेचने का धंधा करती है।... तब जानने को शेष नहीं रहा ?

उचित-अपेक्षित तो यही है, कि वह अब गंगूबाई से लगाव न रखे। सिर्फ़ पैसे के लिए नर्मदाबेन के सामीप्य का लोभ छोड़ दे।...

पर, ऐसा क्या वह कर सका है ? ऐसा क्या वह कर सकेगा ?... क्यों यह द्वन्द्व उठता है ? क्यों वह अधखुली खिड़की-सी (कभी भाँकने, कभी छुपने का माध्यम) बना रहा है, अपनी विचार-सत्ता को ?...

और तब उसे महसूस हुआ... बाहर से वह भले ही कुछ ऐसा अनुभव कर रहा है, कि नर्मदाबेन और गंगूबाई को लेकर उसके मन-मस्तिष्क अशान्त हो उठे हैं, और गलतफ़हमियों के एक टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों से बने दायरे में वह फँस गया है... पर, यह भी सत्य है, कि इन दोनों के सान्निध्य में उसकी अपनी शून्यता को एक आकार मिला है—उसकी अपनी उदासीनता को एक बहल-टहल लेने का अवसर मिला है—उसके मौन को मुखर करने वाली कोई ध्वनि मिली है, जो अंगुली-धरे कानों में प्रविष्ट हो गई है... उसकी अपनी आँखों को एक स्वप्नशीलता मिली है, जो निरानन्द-निस्पंद जीवन-क्रम को एक नया वातावरण दे रही है, जैसे 'केशव भिकाजी' होटल के ऊसल-पाव और मजीया-बटाटा बड़ा खाने वाले को, अचानक 'पुरोहित' में शानदार 'डिनर' का मौका मिल गया हो !...

कृष्ण मुस्कराता हुआ, लेट गया।

अब उसे नींद आ रही थी।...

सफेदपोश-संतरी तब से तीस दिन की ड्यूटी पूरा कर चुका, पर ड्यूटी के टाइम में कटौती कराने के विचार से, चाँद-सितारों की मजदूर यूनियन का 'लाल भंडा' कभी नहीं थमाया उसने, कि मेरी ड्यूटी भी नौ घंटे की कर दी जाए। उसे अपने बूढ़े मालिक से बड़ी हमदर्दी थी। एक तो बेचारा वैसे ही अपनी 'कम्पनी' को नियंत्रित नहीं कर पा रहा है। उसके ही बनाए खेल-खिलौने अब खुद उसी को एक खिलौने (और वह भी खयाली) से ज्यादा मानने को तैयार नहीं !

ऐसे में, जब अपनी 'कम्पनी' के 'प्राइवेट' ही कम्पनी-मालिक की हस्ती मानने से इनकार कर रहे हैं—सफेदपोश-संतरी-जैसे वफ़ादार मैनेजर-नौकर भी यदि 'लाल भंडा' दिखाने लगें, तो बेचारा बूढ़ा, कम्पनी का मालिक, सदमे से मर न जाएगा !...

और सफ़ेदपोश-संतरी की तरह ही, इन तीस दिनों तक कृष्ण का विवेक-सारथी भी मन-मस्तिष्क के दोनों अलग-अलग नस्लों के घोड़े जुते एक रथ को हाँकता रहा है।...लगा तो यों है, वल्गा अब छूटी, अब छूटी—जब-जब मन-तुरंग तीव्र गति से दौड़ पड़ा।...अपनी चंचलता के आवेग में सात किस्म की सरपट-दुलकी पेश करने लगा।...नई-नई उम्र का जोश, नई चालें दिखाता ही है।...पर, मस्तिष्क का काम्बोजी-अश्व, हर स्थिति में, अपना संतुलन बनाए रखने की चेष्टाएँ करता रहा और असफल नहीं रहा।...पर, विवेक कभी-कभी सोचता है, अलग-अलग नस्ल के ये घोड़े यों अगर अलग-अलग चाल ही चलते रहे, तो आखिर वह कब तक वल्गा सँभाले रह सकेगा ?...यह तो

गनीमत है, कि उसका अनुशासन दोनों मान लेते हैं ।...

×

×

×

जब गंगूबाई को मालूम पड़ा, कि कृष्ण नर्मदाबेन के यहाँ कथा बाँचने नहीं, बल्कि पढ़ाने जाता है, तो वह कृष्ण को 'मास्तर' कहने लगी ।

एक दिन वह केले की डलिया लिए, देसाई-भुवन ही चली आई थी । तब कृष्ण नर्मदा को 'बिहारी सतसई' से कुछ दोहे सुना-समझा रहा था ।

“हूँ छे...?” नर्मदाबेन ने प्रश्न किया ।

“केले ध्या कीं, सेठानी बाई ! त्या दिवसीं तुमी सगलं केलीं घेतले, तो माझा सौभाग्य असेल । एवढ्यामुलें भी परत तुमच्या कडे आली, सेठानी बाई !...तुमच्या करितां बसईचे वैशिष्ट्यपूर्ण केलीं घेऊन आली मी—हे बगा, केवढे चांगले आहेत ?”...गंगूबाई ने केले दिखाए ।

गंगूबाई के स्वर में बड़ी मिठास थी । बातें करते-करते, वह इस प्रकार लजा उठती थी, कि देखने वाला देखता चला जाए, देखता रह जाए ।

गंगूबाई की तरफ से नजर हटाकर, नर्मदाबेन कृष्ण से बोली—
“आज अपनी नई नौकरानी भागीरथी वीरमगाम चली गई है । उसका घनी खुद यहाँ छोड़ गया था । अब बुला ले गया । गयादीन भैया ठीक से टहल नहीं कर पाता । बस, टहल तो बाई लोग के हाथ की ही अच्छी होती है न ?...”

१. सेठानी बाई, केले लीजिए ! उस दिन आपने सारे केले खरीद लिए, यह मेरा सौभाग्य ही था । इसीलिए, मैं फिर आपके पास चली आई हूँ । आपके लिए बसई के विशेषतापूर्ण केले ले आई हूँ मैं—ये देखिए, कितने अच्छे हैं !...

“इसे रख लीजिए…” कृष्ण यों ही बोला था ।

और पिछले अठारह दिनों से वह सेठानी नर्मदाबेन की सेवा में थी । उसे जैसे एक नई जिन्दगी मिल गई थी । काम कुछ अधिक था नहीं । खाना पकाने के लिए भट्ट था । बरतन घिसने को अलग एक घाटन थी । सिर्फ़ सेठ-सेठानी की सेवा-टहल उसके जिम्मे थी । सेठजी घर पर यों कम ही रहते थे, पर इधर कुछ अधिक आने लगे थे !...

गंगूबाई को कृष्ण गंगा कहता था ।...

गंगू बोली एक दिन—“मास्तर, तुमने मेरा नाँव बदला है, मैं तुमेरा नाँव बदलूंगी । हमारे महाराष्ट्र में कृष्ण को गोबिन्दा कहते हैं । मैं तुमेरा नाँव गोबिन्दा रखूंगी !”...पर, कहने को वह सिर्फ़ ‘मास्तर’ कहती रही ।...

गए तीन दिन की बात है, उसने सीढ़ी उतरते कृष्ण को रोककर, पूछा—“पीतल के बरतन पर कलई करने से कोई फ़ायदा हो सकता है, मास्तर ?”

“तुम्हारा मतलब...?”

“तुम बहुत कच्चा मरद है, मास्तर, तुमको क्या बोले !” और गंगूबाई ऊपर चली गई थी । पर, कृष्ण तबसे बेचैन है ! नर्मदाबेन का प्रश्न भी उसके मानस-कमल पर भँवरे-सा मँडरा रहा है—“हवे तो तमने गुजराती नी ओलखाण थई गई छे ? एक सवाल पूछवानो छे मारे...जबाब आपशो ? एक फूल हतो...एना परिमल-पराग नो जे असली हकदार हतो, ए भँवरा मा न रस लेवानी सामर्थ्य हती, न मनोवृत्ति ।...शायद, ए बीजा फूलो नी पाँखड़ियो ऊपर गन-गन करतो फरतो हतो...पराग फूल नो परिमल-पराग नो शुँ थाय ? एने भँवराओ ने आपी देवानो तो एनो कर्तव्य पराग, अने एनी इच्छा पराग । एवा फूल नो परिमल-पराग जो अत्यारसुधी मन पसन्त भँवरा नी प्रतीक्षा मा होय, तो ?...केम, ए पापी कहेवाय ?...केटला भँवराओ ऐना पासे आव्या पराग, अने पाँखड़ियो ऊपर बेसी ने गया । पराग, आ फूल एवो

के, “पाँखड़ियो ज आप्या, परिमल-पराग नहिं ! १....”

और वह क्या उत्तर दे बैठा—“तन के समर्पण से नारी का सम्पूर्ण नारीत्व दूषित नहीं माना जा सकता। मन का, आत्मा का समर्पण ही, वास्तविक समर्पण कहा जा सकता है। और उसके औचित्य-अनौचित्य को पाप-पुण्य की संज्ञा देने से पूर्व, उसकी व्यतीत-वर्तमान मनोभूमि-पृष्ठभूमि को भी दृष्टिगत रखकर ही कोई निर्णय किया जा सके...तो मेरे विचार से, नैतिकता की माँग को एक नया रूप दिया जा सकेगा !...”

यह तो अचछा हुआ, कि कृष्ण के इस लम्बे-उलभे वाक्य से, नर्मदा-बेन कोई उत्तर पा न सकीं। पर, उसने ही कैसे ‘फूल’ को नर्मदाबेन का ‘प्रतीक’ मानकर अपनी व्याख्या-मान्यता देने का दुस्साहस कर लिया ?...

नर्मदाबेन प्रश्न-भरी उसे देखती रही थी। उसकी खोजी दृष्टि की वेधकता से बचने के लिए, कृष्ण बोला—“मैं तो जीवन के क्षेत्र में एक अनुभवहीन युवक ही हूँ अभी, सेठानी जी ! ऐसे भावुक और संश्लिष्ट प्रश्नों पर मेरा उत्तर निर्णायक नहीं माना जा सकता।...”

१. अब तो तुम गुजराती समझ लेते हो न ? एक सवाल पूछना है, जबाब दोगे ?...एक फूल था। उसके परिमल-पराग का असली स्वामी जो था, उस भँवरे में उसके उपभोग की न विशेष इच्छा थी, न सामर्थ्य ही। संभवतया, वह दूसरे फूलों की पंखुड़ियों पर गुनगुन करता फिरता हो ?...ऐसे में, फूल के परिमल-पराग का क्या हो ?...इस परिमल-पराग को भँवरों को सौंप देना फूल का कर्तव्य भी, और उसकी आकांक्षा भी—और ऐसे फूल का परिमल-पराग जो अब तक मनपसन्द-भँवरे की प्रतीक्षा में ही हो, तो ? यह पाप कहा जाएगा ?—कितने ही भँवरे इस फूल के पास आए और पंखुड़ियों पर बैठकर, चले गए ! पर यह फूल भी ऐसा था, कि पंखुड़ियाँ ही दीं उन्हें, परिमल-पराग नहीं !

“मेरी व्यतीत-जीवनगाथा से तुम परिचित हो चुके, कृष्ण बाबू ! तुमसे न छुपाया है, न छुपाना है । अपने विगत व्यभिचरित-जीवन से घोर वितृष्णा और विरक्ति हो तो चली है, मुझे...पर मन, अभी निर्मल नहीं हो पाया ।...लाख सोचती हूँ, मन शुद्ध रहे...पर, शरीर में ही नहीं, आत्मा में भी ऐसे कीटाणु प्रविष्ट हो गए हैं, कि कामुकता और वासना की तपन शान्त नहीं हो पाती ।...” दुःखी-स्वर में, नर्मदा, बेन ने कहा था—“तब कभी-कभी मैं सोचती हूँ, मैं एक मजदूर औरत क्यों नहीं हुई, एक गरीब घर की बहू क्यों नहीं बनी...तब मैं पवित्र रह पाती...मैंने देखा है, मजदूरी करने वाली, श्रम करने वाली औरतों का चित्त-रक्त अधिक उच्छ्वल या दूषित नहीं हो पाता । दिन-भर का श्रम उन्हें एक ऐसी मीठी-मीठी थकान देता है, कि ‘सेक्स’ की भूख को वो ज्यादा महसूस नहीं कर पाती हैं ।...इसलिए, पतिव्रताएँ और पवित्र औरतें गरीब-वर्ग में ही सम्भव हैं, करसन बाबू !...श्रेष्ठि-वर्ग में ऐसी औरतें इनी-गिनी ही हों, तो हों ।...”

और कृष्ण ने सोचा था, इस अनुभवशीला नारी के समक्ष उसका ज्ञान कितना न्यून है ? उसे तो कभी-कभी ऐसा महसूस होता, जैसे उसकी माँ उसे कोई कथा सुना रही है, समझा रही है पर, माँ के कहने का ढँग ऐसा हो सकता है, बातें तो ऐसी नहीं ।...और कृष्ण फिर शंकालु हो उठता ।

अपने हाथों से चाय बनाकर, देते हुए, नर्मदाबेन कहती रही थी—“हम सेठानियाँ कहलाने वाली औरतें, निठल्ली बैठी रहती हैं । काम के नाम पर, आराम करने के सिवा कुछ नहीं होता और भोजन-वस्त्र विलासपूर्ण होते हैं ।...ऐसी स्थिति में, ‘सेक्स’ की वृद्धि होती है । नारी में कुछ-न-कुछ करते रहने की प्रवृत्ति प्रबल होती है । गरीब और मध्यम-वर्ग की गृहिणी को कभी देखना, कैसी कर्मठ होती है ?...पर, सेठानियाँ क्या करें ?...और उनमें भी वो, जिनके न सन्तान हो, न समर्थ और प्रेमल पति हों...सेठों के पास इतना धन होता है फालतू,

कि उससे वो अपनी तुष्टि और ऐय्याशी के लिए औरतें, और घर की पोल बाहर न जाएँ...इसलिए अपनी औरत के लिए भाड़े के मर्द... पैसा कितना कमीना बना देता है, इन्सान को ?...करसन...कितना गिरा देता है ?...गरीब क्या जानें, कि दौलत के स्वामी जीवन में कैसी जघन्यताओं और कुत्साओं से घिरे रहते हैं ?...ये जघन्यताएँ और कुत्साएँ उनकी आत्मा को कचोटती हैं, तब भी वो अपनी दौलत का ही सहारा लेते हैं ।...यों अनाथाश्रमों, धर्मशालाओं और मन्दिरों की नींव पड़ती है !...यों पाप की वीभत्सता से पुण्य का उदय होता है, करसन...!”

नर्मदाबेन उत्तेजना-वश अधीर हो उठी थी । कृष्ण को फिर ध्यान आया था, उत्तेजना के क्षणों में मनुष्य सही रूप में सामने आता है । बनावट से परे, आत्मा की आवाज़ ऐसे ही बुलन्द होती है ।...

“मैं भी एक ऐसी ही सेठानी हूँ, करसन बाबू ! शायद, पहला कदम ही ग़लत न पड़ता तो मैं सँभली रहती ।...पर, वासना तो शराब से भी मादक होती है...चरित्रहीनता के पैमाने में तो वह जहाँ एक बार होंठों से लगी, फिर क्या छूटे, बाबा...फिर तो दम छूटे, तो छूटे...हम छूटे...तो छूटे...” और नर्मदाबेन ह्विस्की का पूरा पैग एक साँस में चढ़ा गई थी ।...

पर, उस दिन उसने संतुलन नहीं खोया ।

बोली—“तुम मेरे पास बैठे हो, बैठे रहो ! यह न सोचना, उस दिन की तरह बेशरम बन जाऊँगी । मुझे भी शरम है । मैं भी सोचती हूँ, मेरा बेटा बचा रहता, तो तुमसे कुछ ही छोटा होता...अच्छा, अब तुम जाओ ।”

उसने पलँग की पाटी पर अपना माथा टेक दिया था । तीन-चार दिन बाद आने का आदेश लेकर, कृष्ण भी चला आया था और आज वह जाने की तैयारी में था ।...

आज उसने निश्चय किया था--तीस दिनों के सामीप्य ने इस निर्णय

तक पहुँचने की सामर्थ्य दी थी उसे, कि इन दोनों औरतों के प्रति उस की जो द्वंद्व-द्विविधा से परे की भावना है, उसे बता देगा। फिर चाहे कोई उसकी भावना का निरादर ही क्यों न करे।...

×

×

×

“बड़ी मछली का चारा बनना ठीक नहीं, बाई...और न छोटे मुँह में बड़ा चारा रखना ही ठीक है !...” बीड़ी का एक करारा कश खींचते हुए, विनायक ने गंगूबाई के उल्लास को धीमा कर दिया।...

कल रात गंगूबाई ने एक स्वप्न देखा था।

उसका रामराव उससे मिलने आया था। उसने ‘गंगू’ कहके पुकारा तो गंगू ने मुँह फेर लिया। उसने दोनों हाथ ‘गंगू’ के कंधों पर रख दिये थे—“अपन जानता है, गंगू ! तुम काहे को हमरे से नफ़रत करता है ? हम दारू पीता है ना ? सट्टा-जुगाड़ खेलता है न ?...”

“तुम कुछ भी करते थे... और करते रहना...मगर, यों छोड़कर, क्यों चला गया...?...किसका सहारा ऊपर छोड़ गया हमको?...याद है, एक दिन जाधव जी अपने को देर तक देखता था... तुमने उसकी आँखों में मिट्टी भर दिया था ?...” गंगू सिसक उठी थी—“पण, अभी लोग केले के साथ-साथ हमेरा भी भाव पूछते हैं...उनकी जीभ थामने वाला कोई नहीं। तुम हमको छोड़ क्यों गया...?” वह रामराव के सीने से लग गई थी।

रामराव हँस पड़ा था—“किधर गया था हम ? अरे, हाँ, गया था। देवा पांडुरंग की अदालत में गया था... देवा पांडुरंग हमको बहुत मारा...हम बोला, ‘हमको मारो मत। हमको अपनी गंगू के पास जाने का है’।”...तब देवा पांडुरंग बोला, कि पहले दारू पीना छोड़ो, सट्टा-जुगाड़ खेलना छोड़ो, फिर जाने देगा।...और हम तुमेरी खातिर सब छोड़ के आया, गंगा...देखो, हमारा जेब...किधर ताश का पैकिट है ?

देखो, हमारा टोपी का पाला...किधर 'लखपती' 'करोड़पति' है? ... हमेरा मुँह सूँघो, किधर दारू का बदबू आता है? ...” और रामाराव के दुर्गन्धहीन होंठ उसके होंठों से लग गए थे। और रामराव को जब बाँहों में भर लेना चाहा था, तो वहाँ रामराव नहीं था, कृष्ण था...और उसने दूर हट जाना चाहा था, दूर हट गई थी।...

पर, जब आँखें खुली। नींद टूटी।...तो, उसे ऐसी इच्छा क्यों हुई, कि वह गोविन्दा (कृष्ण) को अपनी बाँहों में भर लेती न? ...और उसे फिर पाने के लिए, उसने दुबारा क्यों सोना चाहा?... वरसों की कामनाहीन जिन्दगी में, भावना का एक अथाम-ज्वार क्यों उमड़ आया— गोविन्दा को अपना बना लूँ? रामराव का प्रतिविम्ब बना लूँ? शायद, पांडुरंग देवा की भी यही इच्छा है?...शायद, उसकी अपनी अब यही माँग है...

और आज वह देर तक सोई रह गई थी। जागने पर उसने आज क्यों ऐसा महसूस किया, कि वैधव्य के साँप को और जिलाए रहना उसके लिए संभव नहीं?...आखिर कब तक वह वैधव्य की नागिन को अपनी उमंगों और कामनाओं को घोंट-घोंटकर, कुंठाओं का दूध पिला-पिलाकर पालती जाए?...पर, वैधव्य की नागिन का दंशन आज ही इतना दुसह क्यों लगा उसे?...

वह देर तक आँखें मूंदे रही, तो विनायक ने जलती बीड़ी उसके गाल से छुआ दी—वह चीख उठी।

“गपचुप...” —विनायक ने चुप रहने का संकेत किया—“स्वाब देखो, मेरी रानी! खूब देखो! चौबीस कलाक (घटे) गद्दे को आबाद करो, सेमल की रुई का तकिया अपन ला देगा।...पण, फिर बोलता है तुम-

१. सट्टे के आँकड़े और 'संभावित-नम्बर' देने वाले दैनिक-पत्र, जो सिर्फ दो पेज के होते हैं और रात के नौ बजे से जिनकी बिक्री ज्यादा बढ़ती है।...

को...मेरी जान, फुटपाली पर केले बेच के, महलों में आबाद रहने का खाब मत देखो !... इतना बड़ा और कड़क बटाटा बड़ा^१ मत लो मुख का अन्दर, कि बटाटा बड़ा तो साबुत रह जाए, मगर तुमेरा नाभनीन (नाजनीन) मुख फट जाए !... गुस्सा मत करो, सनम, मेरी बलम, भुल्मो^२-सितम न करो...”

विनायक ने गंगू का हाथ थाम लिया ।...

गंगू साँप-छुई-सी परे हटने लगी, तो विनायक ने उसका हाथ मरोड़ दिया—“उड़ो मत, मेरी पंछी-चिड़िया ! अपन भी बहुत भालिम है, पर कुतर के रख देगा...तड़फ-तड़फ के मर जाओगी ।...” और उसके मोटे-भट्टे होठों पर एक क्रूरतापूर्ण हँसी फैल गई—“पण, नहीं भाने-मन, तुग भी भिदा रहो, हम भी भिदा रहेगा ।... पण, खाब देखो, तो हमेरा देखो ।...”

“छोड़, पापी, माभा हाथ...” गंगूबाई क्रोधपूर्वक बोली ।

“बहुत छोड़ा हाथ...रामा भाई का माल है करके, अपन दूर-दूर से अपने भिगर को खाक करता रहा... गम की दुनिया में अपने को बरबाद करता रहा...” विनायक ने उसे और ऐंठ दिया—“पण, अब वह वक्त गुजर गया । हमरे सबर (सब्र) का पैमाना टूट चुका है...रामा हमेरा भिगरी दोस्त था...उसके माल पर सबसे पहले अपना हक है !... आज तक हम इसलिए सबर करता रहा, कि दोस्त का माल नहीं तकना—पण, अब तुम खुद, अपना ‘लाइन-करास’ करने ही लगा है, तो पहला गलबट्टी (गलबहियाँ) हमरे गले में डालो ।...” विनायक ने गंगू की दूसरी बाँह को भी मरोड़ कर, अपने कंधों पर रख लिया और

१. आलू का बड़ा ।

२. मराठी में ‘ज’ को अक्सर ‘झ’ उच्चरित किया और लिखा जाता है ।
यहाँ के बड़े-बड़े फिल्म पोस्टरों की ‘हिंदी’ भी ऐसी ही होती है, कि ‘नया जमाना’
पिक्चर को ‘नया झमाना’ और ‘मंजिल’ की ‘मंझिल’ लिखा जाता है ।

और अपने मोटे-भट्टे होंठ आगे बढ़ा दिए... शराब की बदबू से गंगू का सिर भन्ना गया...

विनायक पिछले दो-तीन वर्षों से उसके पीछे था। दारू पीने में, जुआ-सट्टा खेलने में, वह रामराव का जोड़ वाला था और उसके लिए जान पर खेलने को तैयार रहता था। यह भी सच है, कि रामराव की मृत्यु के बाद भी, वह गंगू की सास को अक्सर आर्थिक मदद देता रहता था, और गंगू के प्रति उसकी वासना भी एक सीमा से आगे नहीं बढ़ी थी।...

पर, आज वह सबेरे-सबेरे ही गंगूबाई के कमरे में घुस आया था। माँ केले बेचने चली गई थी चौपाटी। रोज की तरह।

गंगू सहसा निर्णय ही न कर सकी, कि वह जोर से चिल्ला उठे या नहीं?... उसने पूरी ताकत लगाकर, अपना मुँह फेर लिया। तब विनायक ने उसके हाथ छोड़ दिए और उसके मुँह को अपनी दोनों हथेलियों में कसकर थाम लिया—“हमेरी बातों को सिर्फ सिनेमा का डायलौग मत समझो, रानी!... आज तो या अपना हसरत, या अपना लाश निकलेगा!... जब तुमने हमारे दोस्त रामा को लाल बावटा (भंडा) दिखा दिया है, तो अपन अब तुमेरी जवानी का मझा मारेगा।... दोस्त के माल को गैरों को नहीं उड़ाने देगा।...”

और उसने भट्टे-भट्टे होंठ फिर आगे बढ़ाए—तभी किसी ने कुर्ता पकड़के, पीछे खींच लिया। गंगू के मुख से निकला—“गोबिन्दा!” और वह दौड़कर कृष्ण की छाती से लग गई। उसके कुंतल बिखर गए थे। उनसे कृष्ण का मुँह ढँप गया।

“गोबिन्दा को यार बनाया...?”—घृणापूर्वक विनायक बोला, अपने भट्टे-मोटे होंठों को हिलाकर, वह बाज-सा झपट पड़ा। एक ही झपट्टे में, कृष्ण को औंधा फेंककर, वह उसकी पीठ पर सवार हो गया—“खलास करेगा!” और दूसरे ही क्षण उसके हाथ में छुरा चमकने लगा।

बड़ी मुश्किल से कृष्ण अपनी गर्दन घुमा सका, तो विनायक चीखता हुआ-सा पीछे हट गया--“ये तो अपना आर्डरवाला जोड़ीदार किसना बाबू है ? ... यह राँड गंगू, 'गोविन्दा' बोली थी ... कैसी हलकट है, रे ! ... आज इस राँड ने हमारे हाथ से अपना दोस्त का खून करा दिया था ...” और वह हँस पड़ा--“किसना भाई, माफ़ी देना रे हमको । ... ये राँड बोली भी नहीं, कि तुमको अपना भानोभिगर (जानो-जिगर) दे के बैठी है ! ... दोस्त का माल और फिर दोस्त के ही कब्जे में ... अपने खाली-पीली बीच में टांगी (टाँग) काहे को अड़ाएगा ... ?” और वह तेजी के साथ, छुरा वहीं फेंककर, वापस चला गया । ...

गंगू ने सिर उठाकर, देखा--दरवाजे के बाहर मोहल्ले के कई लोग खड़े थे । वह बेहद शरमा गई । किसी ने सीटी दी । किसीने आवाज दी--“आताँ जोड़ बरोबर भाली । ... राँड ला साँड मिलाला, आणखी काय” । ...

शरम और व्यथा से तिलमिला कर, गंगू ने किवाड़ बंद कर लिए । ...

१०

कृष्ण न कमरे में पाँव रखा, तो देखते ही रह गया ।

कसा हुआ, बेहतरीन बारीक कपड़े का ब्लाउज नर्मदाने पहन तो

१. अब जोड़ी ठीक हो गई । राँड को साँड मिल गया है, और क्या चाहिए ... ?

रखा था, पर लगता ऐसा था, उसने सिर्फ बाडिस ही पहन रखी है। यही हाल पेटीकोट का था। साड़ी पहने नहीं थी। सिर के जूड़े पर सर्पाकार बेणी-कुण्डली पड़ी थी। माथे पर कुंकुम-टीका। आँखों में काजल की पतली रेखायें। होंठों पर गहरी लिपस्टिक, गालों पर पाउडर की हल्की-गुलाबी पर्त। ठीक पयोधरों के संगम-स्थल पर पड़ा मुक्ता-हार, जैसे किन्हीं दो मिलों का एक ही मालिक अपने अपार वैभव की मस्ती में, आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे, अपना 'बैंक-बैलेंस' सोच-सोच-कर, भ्रूम उठता हो।...

इतनी रूपवती है नर्मदाबेन ? इतनी शृंगार-कुशल है... इतनी सौन्दर्यचेता, कि इस प्रौढ़ावस्था में भी उसका यौवन इतना आकर्षण सँजोए है, कि देखने वाली आँखें देखती रह जाएँ ?...

एक दिन नर्मदाबेन ने कहा था—“मुझे कभी-कभी ऐसा महसूस होता है, करसन... जैसे मेरी शादी ही नहीं हुई। तुम्हीं सोचो न, अगर मेरी शादी हो गई होती, तो क्या मेरी जीवन-दिशा बदल न गई होती ? मेरी कामनाओं की नर्मदा को तृप्ति के कगार न मिल गए होते, कि वह यों अपनी दिशा बदल-बदलकर बहने को मजबूर न होती ? मेरी स्वप्नशीलता मूर्त न हो गई होती... और सबसे बड़ी बात...” वह हँस पड़ी थी—“मेरे पास नारीत्व की चरम सिद्धि न होती ?... पर, मैं तो ऐसा महसूस करती रहती हूँ, कि जैसे कालेज से अभी-अभी बाहर निकली हूँ, और मेरे पिताजी अब मेरे विवाह का प्रश्न उठाने ही वाले हैं, कि मैं कैसे युवक से शादी करना पसन्द करूँगी ?... और, दरअसल कालेज-जैसी ही तो रही है मेरे लिए यह गृहस्थी... कालेज में अपने एक या अनेक सहपाठी-प्रोफेसरों से व्यभिचरित 'स्टूडेंट' क्या कालेज से बाहर निकलने के बाद फिर से एक बार नए सिर से पुरुष की शोध में नहीं रहती ?... क्या वह अपने व्यतीत व्यभिचारों के खयालों से इतना पस्त हो जाती है, कि नए जीवन के सूत्रपात के लिए उसकी अपनी कोई दिलचस्पी ही न हो ?...”

तो क्या यही मनोभूमि नर्मदाबेन को यौवनशील बनाए रही है ?
“नमस्ते !”

“नमस्ते...बिना नमस्ते किये न आ सकोगे कभी, करसन...”
नर्मदाबेन की मीठी मुस्कुराहट होंठों से कपोल कनपटियों तक व्याप गई—“और, कल क्यों नहीं आए ? तुम नहीं आए, तो वह गंगूबाई, भी क्यों नहीं आई ?...जरा मन बहला देती थी। उसकी बातों में कितनी मिठास है ? और सुन्दर भी वह कितनी है ? आज वह आई है...बहुत बदली-बदली लगती है।...यह वेणी उसी से मँगवाई मैंने ...और यह जूड़ा भी उसी ने बाँधा है।...मैं सोच रही थी, ये कपड़े अगर उसे पहना दिए जाएँ ?...टब में उसे लक्स टायलेट से खूब मल-मलकर, नहलाया जाए...फिर सारे शरीर पर रेमी पाउडर और स्नो मल दी जाए...यही चोली, यही ब्लाउज, यही पेटीकोट और यही कीमती हार पहनाकर, उसे इसी पलंग पर लिटा दिया जाए...ओह, करसन...काश, कि मैं पुरुष होती।”

कृष्ण के मुँह को देखकर, वह हँसती-मुस्कुराती रही।

“गरीबी में सौन्दर्य मुरझा ही जाता है।...”

“लेकिन, तरुणाई और निखर उठती है...क्योंकि, वह वास्तविक तरुणाई होती है, उसकी तह में बनावट नहीं होती।...” यह कहते हुए सहसा नर्मदाबेन का चेहरा उतर गया और दुबारा जब उसने हँसने का प्रयास किया, तो कृष्ण ने देखा प्रौढ़ावस्था की प्रतीक-रेखाएँ उभर आई हैं।...

“गंगू के रूप-यौवन को वैधव्य का घुन लगा हुआ है, करसन... सच, बिना पुरुष के नारी के रूप-यौवन का निखार संभव ही नहीं।...”

“मेरे घर से आए पत्र का जिक्र मैंने आपसे किया था।” कृष्ण बोला—“और अब फिर आया है। मेरे लौटाए सौ रुपये आपने भेज ही दिए ? माँ को मिल गए हैं। मुझे जल्द-से-जल्द आने को लिखा है।...और मैं आपसे आशीर्वाद चाहता हूँ कि...”

“मैं क्या तुम्हारी दादी लगती हूँ, करसन...तुम क्या यह आशी-
र्वाद और 'प्रतिष्ठा' रटते रहते हो ? मैं तुम्हें आखिर लगती क्या
हूँ...क्या तुम मुझे किसी आश्रम में बैठी हुई जोगन समझते हो ?...
क्या तुम मुझे संगमरमर की एक बेजान मूर्ति समझते हो ?...” नर्मदा-
बेन उत्तेजित होकर बोली—“करसन, तुम मुझे एक औरत...सिर्फ औरत
क्यों नहीं समझते ? मेरी कुछ अपनी आकांक्षा, अपनी अतृप्ति भी है...
ऐसा मैं तुमसे कह चुकी हूँ और यह भी, कि तुम्हारे प्रति कोई निश्चित
रूप-रेखा ग्रहण नहीं कर पाई हैं, मेरी भावनाएँ...पर, बिना मेरा
निर्णय सुने ही, तुम अपना निर्णय क्यों देना चाहते हो ?...तुम्हें कभी
यह खयाल भी नहीं आया, कि मैं चार सौ सिर्फ इसी लिए तुम्हें दे रही
हूँ।...सत्तर-अस्सी रुपए में मिल-मजदूर नौ-नौ घंटे कड़ी मेहनत करता
है।...”

नर्मदाबेन का प्रगल्भ-स्वर सुनकर, कृष्ण तिलमिला-सा उठा—
“आप गलती पर हैं, सेठानी जी !...मेरी अपनी आर्थिक मजबूरियाँ हैं, तो
कुछ सामाजिक न सही, नैतिक-मजबूरियाँ भी अवश्य हैं।...और आपकी
भावनाएँ, आपकी मनोवृत्तियाँ तो एक बवण्डर हैं, मैं उनके सामने कहाँ
ठहर सकूँगा ? आपने कभी क्यों यह नहीं सोचा, कि मैं भी एक आदमी
हूँ, मेरी भी कुछ अपनी मान्यताएँ होंगी ? अच्छा, अब में चलूँगा...”

कृष्ण को उठते देखकर, नर्मदाबेन बाज की तरह झपट पड़ी,
उसने कृष्ण का हाथ पकड़ लिया, पलंग से आराम कुर्सी की ओर
भुक्ने से, उसके सुगौर उरोज उसके पहने-न-पहने-से ब्लाउज से बाहर
दिखने लगे थे । झटके के कारण, पयोधरों के संगम-स्थल पर लगे, चोली
के सेफटी-बटन खुल गए थे ।

कृष्ण सहसा देखते ही रह गया — नारी के इन मोहन-मादन अंगों
को देखकर भी, स्पर्श न करने की इच्छा बनी रह सके, ऐसा संयम
पुरुष में हो सकता है ?...

नर्मदाबेन की उष्ण साँसें उसके मुँह से टकराई, तो उसने देखा

नर्मदाबेन रो रही है—“सेठानी हूँ न, कुत्ते की पूँछ-सा स्वभाव है... मैंने रुपयों से मर्द खरीदे हैं। पर, खरीदे हुए मर्दों को ऐसे ही छोड़ भी दिया, जैसे खाने के बाद कोई अपनी जूठी थाली सरका दे... उनको तन-यौवन सौंपने के बाद भी, कभी उन्हें रोके रहने को जी नहीं हुआ। किराए की सूट में दाग लगने से, क्या किसी पुरुष को दुःख हो सकता है? तब औरत ही क्यों पुरुष की परवा करे?... मुझ-जैसी औरत...”

कृष्ण सुनता रहा, बस।

नर्मदाबेन बोली—“एक खन्ना था... पंजाबी। उससे मैंने अपनी वासना-पूर्ति की। यह सौदा सिर्फ इसलिए एक दिन केन्सल हो गया, कि मैं उसे लेकर दो बार ‘आस्ट्रिया’ में गई, पर पैसे सिर्फ एक बार दिए। मैंने फिर देने की बात कही, तो कहने लगा, कि मैं तो ‘एडवांस’ लिया करता हूँ।... चौको मत ये बातें साधारण आदमी नहीं जान सकते।... हम लोगों के व्यभिचार और पाप भी एक व्यूह-बद्ध दायरे में होते हैं।... तो वह खन्ना... वह ‘स्पेशल वर्कर’ बनकर खादी का भोला कन्धे पर डाले बड़े-बड़े घरों में जाता है।... और मुझ-जैसी औरतों की नब्ज पहचानता है।... इन्सान की गैरत का सिर्फ इतने से अंदाजा लगा लो, करसन... एक दिन में उसके साथ होटल गई, जब शाम को भी ‘सीक्रेट-रूम’ लेने की इच्छा मैंने प्रकट की, तो वह खन्ना बोला—“मैं मजदूर नहीं हूँ। इस बिल्डिंग “को बनाए रहना, मेरी ‘बिजनेस’ का पहला उसूल है।” और उसने बड़ी बेशर्मी से अपने शरीर पर हाथ फेरा।... ऐसा करना, करसन... हम सेठ कहाने वालों की जिन आंतरिक-विकृतियों का जिक्र मैंने तुमसे किया है, उन्हें एक पुस्तक के रूप में लिखकर घर-घर पहुँचाने की चेष्टा करना... ताकि, किसी को तो गैरत महसूस हो। कोई तो अपने पापों का सही प्रायश्चित्त कर सके... कोई तो खड्ड में गिरते-गिरते सँभल सके।... सेठ-सेठानी भी साधारणतया इन्सान ही होते हैं, करसन... पर दौलत का नशा उनकी इन्सानियत को धिनौने सूअर की तरह अनैतिकता की कीचड़ में लोट लगाने

का जोश देता है।...एक गलत हो, तो दूसरा उसकी गलती को दिखाए, यह एक कर्तव्य भी हो सकता है।...तो लिखोगे न पुस्तक..."

"हाँ, सेठानी जी।...अवश्य लिखूंगा...आपकी ही इच्छा-पूर्ति के लिए नहीं, अपनी तुष्टि के लिए भी..." कृष्ण कह उठा—“विश्वास मानिए, मेरा मन कभी भी दूषित नहीं हुआ, आपके प्रति...मैं ऐसा बीच-बीच में महसूस करता रहा हूँ, कि आपकी बातें मुझे सुननी चाहिए। आपके दर्द को बँटाना चाहिए...यह लगाव मेरी किस किस्म की कमजोरी कही जा सकती है, यह निर्णय मैं भी नहीं कर पाया था।...पर आपकी निर्बन्ध भावुकता को देखते हुए, इस स्थिति को अधिक सँभाले रहना—न मेरे वश में है, न आपके अख्तियार में।...यही सोचकर, आज मैं कृत-संकल्प होकर आया था, कि आपका निर्णय जानकर ही रहूँगा।...इससे पहले आप मेरा निर्णय तो..."

"ठहरो, करसन !..." नर्मदाबेन ने बच्चों की तरह उसके होंठों पर हाथ रख दिया—“समस्या तुम्हारी नहीं, प्रश्न तुम्हारी गलत भावनाओं का नहीं—तब निर्णय तुम कैसे दे सकते हो ?...यह तो कान्त वाली बात हो जाएगी, कि ‘इण्टरव्यू’ और दे—और पास कोई और हो...?..."

हल्के-हल्के कृष्ण के कपोलों को थपथपाकर, नर्मदाबेन बोली—“करसन, तुम भी निर्णय कर चुके हो...और निर्णय मैं भी कर चुकी हूँ...पर, शायद, तुम्हारा अपना निर्णय इतना एकांगी हो, कि उससे मेरा अहित हो जाए...उसे सुनते ही शायद, मेरी भावना-भित्तियाँ एकाएक ऐसे ढह जाएँ, कि मैं हृदय को भी दबने से न बचा सकूँ...पर, मेरा निर्णय तुम्हारे लिए अधिक घातक नहीं हो सकता...तुमने मेरी भावुकता को निर्बंध की संज्ञा दी है...और ठीक भी हो सकता है यह, पर भावनाएँ मेरी आधारहीन-लता हो सकती हैं, मूलविहीन नहीं।...गौर करोगे तो पाओगे मेरा दृष्टिकोण व्यावहारिक ही लगेगा।..."

"करसन, तुम्हें लेकर मैं आत्म-मंथन करती रही, पर बावजूद

अपनी सारी आत्म-शक्ति के यही मैंने तय पाया है—अपनी वासना के कालकूट को मैं अकेले वरण नहीं कर सकती ।... मैं इतनी व्यभिचरिता हो चुकी हूँ, कि अनासक्ति-योग निभाना मेरे वश में नहीं ।... जिसने भोग किया ही नहीं हो, वैभव या व्यभिचार का—वह अनासक्त रह सकता है, पर इन दोनों विषों के कण जिसकी रक्त-शिराओं में पैठ गए हैं, वह सहज ही इनसे मुक्त नहीं ही हो सकता । इस गरीबी में भी, अपने आदर्श और चरित्र की रक्षा के लिए—तुम धन को ठुकरा सकते हो, पर अपार-वैभव होते हुए भी, और ज्यादा की उपलब्धि के लिए हमारे सेठ जी अपनी इन्सानियत तक को ताक में रख देंगे ।... अरे, मैं तो तुम्हें लेक्चर देने लगी... ऐसा क्यों महसूस होता है, करसन कभी-कभी... कि, तुम्हारे साथ बोलते हुए ऐसा महसूस करती हूँ, जैसे कोई अपने बे...” नर्मदाबेन ने अपनी जिह्वा को दाब लिया... अपनी सुगौर बाँहें कृष्ण के गले में डाल दीं—“अपने आदर्श की पूर्ति मेरे लिए साध्य नहीं रह गई—ऐसा करके मैं अपने जीवन को ही खत्म कर लूंगी ।... अब अपनी कामना-वासना का भार मैं तुम्हारे कन्धों पर डाल देना चाहती हूँ ।...”

कृष्ण ने पीछे हट जाना चाहा, पर नर्मदाबेन ने उसे बाँहों में कस लिया—“करसन, इससे तुम्हें क्षणिक ग्लानि हो सकती है, पर मेरा शेष जीवन सुखी हो जायगा... मेरे असीम सुख के लिए, तुम अपनी क्षणिक द्विविधा की बलि देकर तो देखो... तुम पहले पुरुष हो, जिसे मैं अपनी-सम्पूर्ण आस्था से समर्पण करने जा रही हूँ... मैं तुम्हें नारी-पुरुष के मिलन का चरम सुख दूंगी ।...”

नर्मदाबेन ने अपना सारा शरीर कृष्ण पर छोड़ दिया । न जाने कैसी सिलाई के वस्त्र थे, एक-एक कर अपने-आप उधड़ गए और वह अनावृता रह गई ।

“तुमने नारी का आदर्श रूप ही देखा, उद्दाम रूप नहीं देखा... तुमने नारी का वात्सल्य ही देखा है, उसका रमणशील प्यार नहीं

देखा...आज तुम वह सुख पा सकोगे, जिसकी प्राप्ति के विचार मात्र से बड़े-बड़े मनस्वियों का धैर्य खलित हो जाता है..." और न-जाने कहाँ से आ गई उसमें इतनी शक्ति उसने कृष्ण को कुर्सी पर से, पलंग पर खींच लिया...

नर्मदाबेन की वह अनावरण देह-यष्टि...और मांसल, पानी से अलग की गई मछलियों-सी फड़कती मांस-पेशियाँ...और इस सबका यह सामीप्य—और अगर यों ही अनावृता गंगा भी होती...तो ? .. उसकी माँ भी होती, तो ?...उसकी बहन भी...

और वह चीख मारता-सा उठ खड़ा हुआ—

तेजी से उसने अपनी चपलें पहनीं और जाते-जाते बोला—“सोचता हूँ, सिर्फ निर्णय ही मेरा होता...तो मैं उसे बदल सकता था...पर अपनी जो आस्था है, उसे नहीं बदल सकता । मैं मानता हूँ, नारी अपने काम्य रूप में भी दुर्निवार-सौन्दर्य-बिन्दु लगती है, पर वह बिन्दु सही रेखा पर होना चाहिए ।”

द्वार तक जाकर फिर लौट आया कृष्ण । फिर से आराम कुर्सी का सहारा लेकर खड़ा हो गया । संयत स्वर में बोला—“नारी के शरीर में यों अपवित्र कुछ भी नहीं...मुझे तो आपके वस्त्रहीन-शरीर से संगमरमर की ऐसी मूर्ति का अहसास हुआ, जिस पर धुन्ध और मैल की पर्त बैठ गई हो...मेरे कदमों को डिगा सके, मुझे आदर्श से च्युत कर सके ऐसी कोई नवीनता उसमें नहीं...ऐसा ही शरीर मेरी माँ का, मेरी बहन का भी हो सकता है और मेरी प्रेयसी का भी—अब आप मेरा निश्चय जान चुकी होंगी ?...हाँ, जाते-जाते और इतना कहना चाहता हूँ...जिस रमणशील प्यार का हवाला आप दे रही थीं, वह उपलब्ध हो चुका...” “और उसके होंठों पर मुस्कुराहट फैल गई—“और मैं आपसे आशीर्वाद चाहूँगा ।...”

वह चलने लगा, तो नर्मदाबेन ने संतप्त-स्वर में पूछा—“इतना तो बताते जाओ, वह भाग्य शालिनी कौन है...?”

“गंगा...आपकी नौकरानी...”कृष्ण पास चला आया—”सिर्फ इसलिए बता रहा हूँ, कि आपने भी अपने जीवन की गोपनतर बातें मुझसे कही हैं। मैं चाहूँगा, आप भी अब अपनी मनोभूमि को सही-सही रूप दें।...बिंदु कितना ही सुन्दर, कितना ही आकर्षक-हो, अभीष्ट-रेखा से बहुत परे या बहुत टेढ़ी-मेढ़ी रेखा पर नहीं होना चाहिए...”

नमस्कार कर, वह चला आया।

आज एक आर्थिक अवलम्ब टूट गया था, पर जैसे किसी अति-विकृत अंग के कट जाने से विशेष दुःख नहीं होता, आज उसे खास परेशानी अनुभव नहीं हुई।

कल जो कितनी ही अस्पष्ट, अन-उभरी रेखाएँ एक सुघर-सुन्दर आकार पा गई थीं, उस सुखोपलब्धि के समक्ष जैसे यह खोना' कुछ भी नहीं।...

उसने निर्णय कर लिया, चाहे गंगा को भी निकाल दे सेठानी, वह जीवन में एक अडिग-आदर्श लेकर जिएगा। जो जी न सके वह आदर्श ही क्या?...सो, कल ही उसने गंगा से मिलकर, यह संकल्प किया था—चाहे कुछ अवधि तक वह होटल में ही नौकरी करता रहे, चाहे गंगा सेठानी के घर काम करती रहे या केले बेचती रहे, रोजी-रोटी के इन माध्यमों को बनाए रख कर भी, दोनों एक सूत्र में बंध जाएँगे। एक-प्राण हो जाएँगे। फिर, कभी न-कभी तो स्थिति सुधरेगी ही।...

और इस संकल्प से उन दोनों को एक राहत मिली थी।...

“एक मिनिट, वस्ताद !” पोपट ने प्रश्न किया—“आपने यह इस-टोरी मेरे अलावा इससे पहले, किसी को भी सुनाई थी ?...”

“नहीं तो, बेटे !...मगर’ यकायक यह सवाल तूने क्यों पूछा, कि ‘बाल-बच्चे अच्छे हैं ?’ तो ‘भुत्ता बनाकर खाऊँगा ।’—मैंने यह किस्सा ओरों को सुनाया, तुम्हारे सुनने से इसको क्या ताल्लुक ?...आम की टोकरी को लगत, बगीचे के पेड़ों की गिनती ? ...”

“बहरे-बैंगन की मिसाल तो ऐसे देते हो, गुरु ! ... जैसे कोई औरत अपने मरद का नाम पूछे जाने पर, अपने ससुर का नाम पेश करे, कि फलाने के बेटे हैं !...” पोपट ने करारा जवाब दिया—“दरअमल, यह सवाल अपन इसलिए पूछा था, कि पेड़ों की गिनती भले ही मालूम न हो सके, पर आम की नस्ल और खासियत तो मालूम हो जाए ? ... बात यह है, वस्ताद !...जिस, ‘इश्के-कामरान’ पिक्चर का अपन जिक्र किया था, उसकी इसटोरी आपके किस्से से मिलती-जुलती है ।... मेरे को शक गया, कि हो सकता है, यह किस्सा आपने पहले भी किसी को सुनाया हो और उसने यह आइडिया, डीरेक्टर इंशाअली को बेच दिया हो, कि बेगम दौलत से भी मोहब्बत न खरीद सके और कनीज़ अरे, कनीज़ का तो अपन अभी आपसे जिक्र ही नहीं किया था ।... ‘डिरामा की चोपड़ी को जेब से निकालकर, फिर जेब में रखते हुए, पोपट कहता रहा—मगर, इस डिरामे की चोपड़ी में तो लिख दिया है,” आगे पदों पर देखिए...मगर, हम जो कैमरा आगे-पीछे सर-काने का एकसटरा रोल किया था, उससे आपको किस्से का आकखा (पूरा) मज़ा चखाएगा ।... खिड़कियों (याने कभी इस खिड़की, और कभी उस खिड़की) से, ‘किलोजप’ के आँसू गिराने के बाद, बेगम गुलब-

दन ने, एक दिन का 'वाकया' है, (यहीं सीन भी डिराप, होता है) अपनी कनीज़ मेहरबानो को एक पैगाम देकर, शायर कामरान के पास भेजा... और जब वह लौटी, तो उसकी आँखों में कामरान की मोहब्बत का छलकता हुआ जाम था... खैर, अभी आप अपना किस्सा तो पूरा करो, वस्ताद !... हाँ, तो आपने किसी गैर को सुनाया नहीं था यह किस्सा न ?... गुरु होता यह है, कि ये डीरेक्टर लोग हैं न, फटा कुर्ता पाजामा पहनकर, फुटपाथों पर फिरते रहते हैं और जहाँ किसी आप-जैसे किस्सों के गुरु को देखा, कि बेटे फौरन सलाम भुकाएँगे, कि, "वस्ताद, कोई लाजवाब किस्सा..." और लाजवाब किस्सा सुनने के दौर में, चा-पानी भी आपकी गाँठ का पी जावें और फिर अपने बँगले पर जाकर, डिरेस बदलें। कोट- पेंट और टाई लटकाकर, हिरोइनों को फोन करें---'हलो, बेहतरीन स्टोरी है। गोल्डन-चान्स दे रहा हूँ आपको।' यों सत्ताईस हिरोइनों को फोन कर के सत्ताईस दिन का राशन-नाश्ता बचावे, उनके घर जा-जाकर।... और यों ही डिस्टीबूटर को भी फँसावे, क्योंकि डीरेक्टर तो गुरु होता है फिलम-नैन का ! सट्टे का नम्बर खुद देता है, पर पैसे औरों से लगवाता है। यों मिया मरे, बीबी मरे—उसे क्या वास्ता, दावत हर हालत में मुल्ला की।... अच्छा वस्ताद, किस्सा शुरू करो ..."

"किस्सा तो खतम भी हो चुका है, बेटे !" वस्ताद ने अपनी मुड़ी हुई चादर को बिछाने की कोशिश करते हुए कहा, तो सहसा पोपट चौंक उठा...

"क्या बोलते हो, वस्ताद ? हमारे की तो लगता है, किस्सा अभी बहुत बाकी है।..." फिर वह हँस पड़ा—"अलबत्ता, बुढ़ा जरूर हो हो गया है।... जैसे बचपन के खेल-कूदों, जवानी की रँगरेलियों के बाद बुढ़ापे में आदमी चलने-उठने में तो सात जगह लाठी टेकता है, मगर एक जगह खड़ा हो कर खाँसता है, तो सात दीवारों पर बलगम के पलस्तर लगाता है--मगर, बातें बड़े ज्ञान-ध्यान की करता है... ऐसेच, आपका

यह किस्सा भी कमर पर हाथ रखके खाँसने लग गया, कि अपनी दिल-चस्पी का नौजवान बड़ी बेरँग मनहूसियत-सी महसूस कर रहा है।... अपने को ऐसा लगता है, चटपटी चाँट खाते-खाते कोई फीका, बगैर नमक-मिर्च का बासी दहीबड़ा मुँह में आ गया है... या, आपका किस्सा डीरेक्टर इंशाअली की पक्चर से बना है, या इंशाअली ने आपकी इसटोरी पार्सल करके अपना टेलीफून-नम्बर मिलाया है।... जैसे उसकी पक्चर में भी, इन्टरवल के पहले-पहले तक, नाच-गानों की भरमार रहती है, और बाद में सारी फिलम म्यूझिक-मास्टर के मातमी-म्यूझिक में डूब जाती है, ठीक ऐसे ही आपका किस्सा भी बेरँग हो रहा है, गुरु!... माफ़ करना, तुम्हारे हाथ का फेंका हुआ टुकड़ा, तुम्हारे मुँह का थूका हुआ पान हैं अपन—मगर, किस्से में अब मजा भी नहीं रहा।... जैसे बेवक्त की मौत कोई मर गया हो। डीरेक्टर इंशाअली की पक्चर में पहले हेलन-कक्कू और गोप-याकूब का काम रहता है... पब्लिक लोग दिल खोल के 'सीटी' बजाता है, 'वोइ-वोइ'—'लेना',... 'यही है' कि बूम आवाज लगाता है... मगर इन्टरवल के बाद में नासूर खान तो हीरो और मुकद्दर सुलताना हीरोइन... और उनके 'किलोजप' के अमरूद-सरीखे आँसू... और म्यूझिक-मास्टर का मातम कैमरा सरकाने की नौकरी तो हम पूरा किया, पर पक्चर देखने जब गया,—तो ऐसा लगा, अब कुर्सी खाली करे, अब कुर्सी खाली करे... पण, बेचारे खटमलों का ख्याल रखना पड़ा।... हाँ, तो बस्ताद... अपना किस्सा तो पूरा करो... कादर भाई की छमियाँ (दारू) आने तक, वखत कट जाए।... मरने की तैयारी में जो हो, उसका इलाज करना चाहिए, गुरु—कफ़न लाके रखना ठीक नहीं।... किस्से को अभी और रँगत अभी और वज़न दीजिए ...”

“जब आखिरी वक्त किसी चीज़ का आ जाता है, बेटे... तो उसे बनाए रखने की हिमाकत करना, खुदा के उसूलों से बगावत करना है... अगर, तुम्हारे डीरेक्टर इंशाअली की पक्चर तीन कलाक की

जगह, बारा कलाक (घंटे) लगातार चलती रहे, तो ?...” वस्ताद चादर की शिकनें ठीक करते हुए बोले— “पकी हुई फसल को ज्यादा अर्से तक खेतों में रहने देने वाले किसान को क्या अक्लमन्द कहा जा सकता है ?...और, तूने भी एक ही कही, बचपने, जवानी और बुढ़ापे की बात...बाप बूढ़े न हों, बच्चे जवान न हों...तो इस दुनिया में पकी फसल कटे नहीं, और ऐसा टैम आ जाए, कि दूसरी फसल बोने को जमीन ही खाली न मिले !...सो, कलंदर, हर चीज अपने दायरे, अपने टैम में ही अच्छी लगती है ।...जब हम ग्वालियर स्टेट में थे, वहाँ एक उस्ताद से हमारी दुआ-सलाम थी...वो कहा करते थे, ‘जमन कल्यान राग को सवेरे और भैरव राग को शाम को गाए तो गायक कोढ़ी हो जाए...’ और, बेटे !...वक्त और टैम की, दायरे की बात ही तो बेचारे करसन ने सेठानी नर्मदाबेन से कही थी ।... पर, उसे कहाँ चैन ?... उसने सोचा, ‘अभी एक दाँव बाकी है...’

“दुपेर को गंगूबाई जब उसके कमरे में आई...उसने तिजोरी खोल कर, नोटों का ये गड्डी-का-गड्डी उसके सामने डाल दिया— “गंगूबाई, तने नाणा केटला जोड़े...मारा पास थी लईजा...हजार, बे हजार... त्रण हजार पण, ए करसन बाबू छे ने ? एने साफ ना पाड़ी दे, कि तू एना साथे मोहव्वत करती नथी... हैं तारे पगे पड़ी शूँ, गंगूबाई !...तने हैं रहेवा माटे बाँदरा मा फ्लैट आपीश, पण तू मारा करसन बाबू ने मने आपी दे...”

“गंगू बाई ने नोटों को उठाकर सेठानी की पलँग पर रखते हुए, जवाब दिया—“सेठानी बाई, ही तुमची दौलत मला नको...तो तुमचा

१. गंगूबाई, तुझे रुपए कितने चाहिए, मेरे पास से ले जा । एक हजार, दो हजार, तीन हजार...मगर, वह कृष्ण बाबू है, उससे साफ यह कह दे, कि तू उसको प्यार नहीं करती । मैं तेरे पाँव पड़ती हूँ, गंगूबाई ! मैं तुझे रहने को अपना बाँदरा वाला फ्लैट दे दूँगी; पर तू मेरे कृष्ण बाबू को मुझे सौंप दे ।

बाँदरा चा फलैट मला नको... परा, तो तुमचा करसन बाबू... तो माभा मनाचा मीत गोबिन्दा... मला फकत तोच पाहिजे !...^{१३}

नर्मदाबेन ने बहुत उसे समझाया, कि करसन तो मेरी दौलत को प्यार करता है। वह तुमसे सिर्फ खेल खेलना चाहता है।... पर, गंगूबाई तो गंगूबाई... बोली—“सेठानी बाई, ही तुमची नौकरी परा मला नको।...”

“और चली आई, कि केले बेचना भला, पर जहाँ उसकी, उसके गोबिन्दा की मोहब्बत को पैसे से खरीदने को हविशें हों, वहाँ रहना ठीक नहीं। उसने सोचा, हमेरा रामा दारू-जुगाड़ छोड़ के हमेरे पास गया है।...अभी हमको छोड़ के किधर नहीं जाएगा।...”

“बस, बेटे, अब किस्सा खतम ही होना चाहता है। थोड़ा बाकी ह गया है...” वस्ताद ने लेटते हुए कहा—“तू जरा दूर तक नजर। दौड़ा, कहीं कादर बेटा नजर आता है ...?”

“यों कहो, वस्ताद !... बीमार मर चुका है...फकत दफनाने की रस्म बाकी रह गई है ?...” किस्सा जल्दी खतम होते देख, पोपट चिढ़ गया।

“...तो, बेटे... यों तिरिया के दो... सिर्फ दो भेदों की कथा तुम्हें सुनाई... अब मुझे नींद आ रही है।...” और वस्ताद ने मुँह ढाँप लिया।

पोपट ने चादर खींच ली—“गुरु, रुपये के नाम पर इकन्नी बताई और वह भी खोटी...? सारा किस्सा खा गए, थोड़ा बाकी बताया... अब उसे भी एक खाब की शक्ल दे रहे हो ?... और आप तो कहते थे, अपन नर्मदाबेन सेठानी के उधर चलेंगे ?...”

२. सेठानीबाई, तुम्हारी यह दौलत मुझे नहीं चाहिए, वह तुम्हारा बाँदरा वाला फलैट भी नहीं चाहिए। वह तुम्हारा कृष्ण बाबू... वह मेरे मनका मीत गोबिन्दा...मुझे सिर्फ वही चाहिए।

“चरस कहाँ से लाया था, बेटे ?” वस्ताद ने अलग ही प्रश्न किया।

“नहीं बताऊँगा।” पोपट अड़ गया— “पहले आप पूरा किस्सा सुनाइए... नर्मदाबेन से मिलाने का वादा कीजिए... वह तो हमारी आँखों में जादू की तस्वीर की तरह बैठ गई है।...”

“पहले तुम मेरे इस सवाल का जवाब दो, बेटे, कि आज तुम चरस की गोली कहाँ से लाए थे ?” वस्ताद बोले— “इस सवाल के जवाब का यानी चरस की गोली का इस किस्से से बहुत बड़ा ताल्लुक है।”

पहली बार पोपट ने गोर से देखा, कि वस्ताद की आँखें और दिनों से बहुत ज्यादा लाल हो गई हैं।

बोला— “चरस की गोली का किस्से से ताल्लुक, वही मिसल हुई, वस्ताद कि ‘बाबा, जरा फलाँ गाँव का रास्ता बता दीजिए।’... तो, ‘बेटे, किधर से आ रहे हो ?’... खैर, सुनिए ! अपने कल्लन भाई कहीं मटर-गश्ती को गए थे... सो, अपन आज चरस पंडित भैया के उधर से ले आया है।...”

“बगैर मिट्टी मिलाये दी है, बिरादर ने !” वस्ताद आँखें बंद कर लेट गए— “तभी बहुत ज्यादा चढ़ गई है। अपने कुछ होश में नहीं हूँ, कि आज ‘ओपन’ का आँकड़ा लगाया था, या ‘किलोज’ का...”

